* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८० रुपये

‘राम-सियाकी जोड़ी’

भगवती श्रीसरस्वती

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
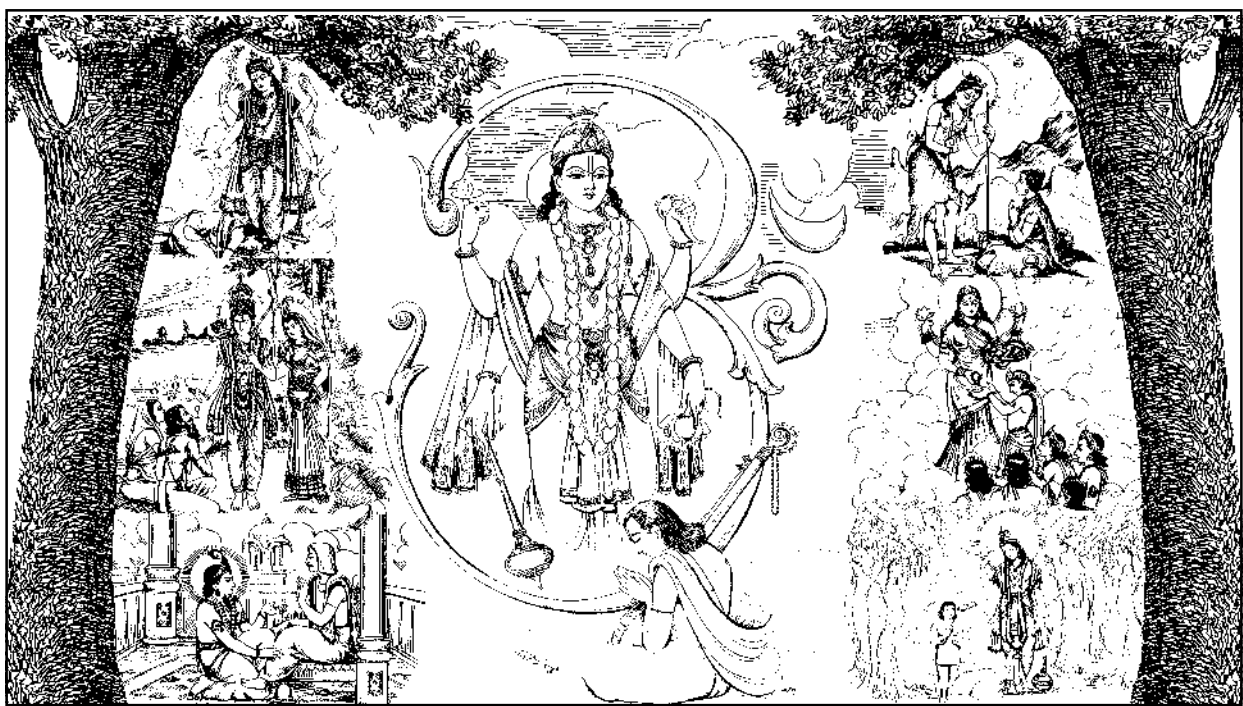
कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, फरवरी २०२२ ई० | संख्या २

पूर्ण संख्या ११४३

भगवती श्रीसरस्वती

हंसारूढा हरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता
वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा।
विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्त्रजा दीप्तहस्ता
श्वेतताब्जस्था भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात्॥

'जो हंसपर विराजमान हैं, शिवजीके अट्टहास, हार, चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल वर्णवाली हैं तथा वाणीस्वरूपा हैं, जिनका मुख मन्द-मुसकानसे सुशोभित है और मस्तक चन्द्ररेखासे विभूषित है तथा जिनके हाथ पुस्तक, वीणा, अमृतमय घट और अक्षमालासे उद्दीप्त हो रहे हैं, जो श्वेत कमलपर आसीन हैं, वे सरस्वतीदेवी भक्तोंकी अभीष्ट-सिद्धि करनेवाली हों।' [श्रीदक्षिणामूर्तिसंहिता]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, फरवरी २०२२ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000) ; **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

प्रेमी पाठकोंसे नम्र-निवेदन

आप सब सुहृद् पाठकोंके सहयोगसे अब 'कल्याण' सफलतापूर्वक अपनी यात्राके ९६वें वर्षमें प्रवेश कर गया है। हम शताब्दी वर्षकी ओर सतत अग्रसर हैं। सौभाग्यसे कल्याणको विरक्त साधु-सन्तों एवं कर्मनिरत धर्मशील सद्गृहस्थजनों—सभीका स्नेह एवं सहयोग सदैव मिलता रहा है।

'कल्याण' एक आध्यात्मिक पत्रिका है। इसमें साधकोपयोगी ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग इत्यादि विषयक साधन-सामग्रीके साथ-साथ सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन-मूल्योंको पुष्ट करनेवाली सामग्री देनेका प्रयास रहता है।

हमारा सदैव यह भी प्रयास रहा है कि हम अपने मूल सिद्धान्तोंपर दृढ़ रहते हुए सभी आयु-वर्गके पाठकोंकी मनोवांछित सामग्रीको प्रामाणिक एवं सुरुचिपूर्ण स्वरूपमें प्रस्तुत करें। देश-काल-परिस्थिति-भाषा एवं व्यवहारमें युगानुरूप परिवर्तनके कारण अभिरुचि एवं आवश्यकताओंमें भी परिवर्तन स्वाभाविक है। कल्याणके पाठकोंकी भी इस समय तीसरी एवं चौथी पीढ़ी आ चुकी है इस कारण वर्तमानमें पाठकों, विशेषकर युवा-पीढ़ीके पाठकोंकी अभिरुचिको जानना नितान्त आवश्यक प्रतीत हो रहा है। यदि हम उनके मनोभावोंको समझ सकें, तो पत्रिका सभीके लिये अधिक उपयोगी एवं सुरुचिपूर्ण सिद्ध हो सकेगी।

हमारे जिन धर्मप्राण पाठकोंका परम्पराके प्रति सम्मान है, शास्त्रोंमें निष्ठा है तथा जो कल्याणको अपनी ही पत्रिका मानते हैं, उनके विचार हमारे लिये अत्यन्त मूल्यवान् हैं। उन सभीसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे हमें सुझाव दें कि 'कल्याण' में—

- किस प्रकारके लेख आदि आपको विशेष प्रिय लगते हैं?
- कौन-से स्तम्भ आपको रुचिकर लगते हैं?
- कौन-से नये स्तम्भ आप पत्रिकामें आवश्यक समझते हैं?
- किस प्रकारकी सामग्री आपको अनुपयोगी प्रतीत होती है?
- किन विषयोंपर आप विशेषांक प्रकाशनकी आवश्यकता समझते हैं?
- किस प्रकारके चित्र आप कल्याणमें देखना चाहते हैं?
- पत्रिकाके मूल सिद्धान्तोंको छोड़े बिना आप इसमें क्या परिवर्तन चाहते हैं?
- इसके अतिरिक्त भी अन्य कोई सुझाव हो, तो लिखें।

आपके सुझाव हमारे लिये अत्यन्त मूल्यवान् हैं, कृपया नीचे लिखे पतेपर अपने सुझाव भेजकर हमें अनुग्रहीत करें। हमें विश्वास है कि आपका सहयोग एवं स्नेह पूर्वकी भाँति प्राप्त होता रहेगा।

—सम्पादक

पत्राचारहेतु पता—
कल्याण सम्पादकीय विभाग
सी.के. १७/१ सुड़िया, वाराणसी-२२१००१

फोन : (०५४२) २३३३४७२
मोबाइल : ९८३९९००३४८
e-mail : gpsv.vns@gmail.com

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

***याद रखो*—**कोई भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति तुम्हें शान्ति नहीं दे सकती, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकती, तुम्हें सुखी नहीं बना सकती, यदि तुम भगवान्‌के मंगलमय विधानके अनुसार प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करके उससे लाभ नहीं उठाते।

***याद रखो*—**प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग यही है कि उसमें भगवान्‌की कृपाका अनुभव करो, उसमें अपना मंगल देखो और उससे लाभ उठाओ। यह निश्चय करो कि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, मेरे परम सुहृद्, न्यायकारी और दयालु भगवान्‌ने मेरे कर्मोंको देखकर जो कुछ भी मेरे लिये विधान किया है, निश्चय ही मेरे लिये उसमें परम मंगल निहित है।

***याद रखो*—**भगवान्‌ने तुम्हारे लिये जो कुछ भी परिस्थिति दी है, यदि तुम उससे लाभ उठाना चाहो तो प्रत्येक परिस्थिति तुम्हारे लिये शुभ और मंगलमयी हो सकती है। यदि तुम्हें भगवान्‌ने प्राणी-पदार्थ दिये हैं तो समझो कि तुम्हें सेवा करनेका अवसर दिया है। तुम उन वस्तुओंके ट्रस्टी हो, मालिक नहीं; उनकी सँभाल रखना, रक्षा करना और जहाँ, जब आवश्यकता हो वहाँ, तब यथायोग्य व्यवस्थापूर्वक उन्हें मालिककी सेवामें लगाते रहना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम यदि अपनेको उन वस्तुओंका स्वामी न मानकर उन्हें प्रभुकी सेवामें लगाते हो तो उनका सदुपयोग करते हो। इसी प्रकार यदि तुम्हारे पाससे वस्तुएँ चली गयी हैं तो समझो कि प्रभुने दया करके तुमको मोहमें फँसानेवाली स्थितिसे बचा लिया है, उन्होंने तुमपर बड़ी ही कृपा की है; और कृतज्ञ हृदयसे प्रभुका स्मरण करते हुए तथा संतोष और सुखका अनुभव करते हुए इस परिस्थितिसे लाभ उठाओ।

***याद रखो*—**यदि तुम अपनी वर्तमान परिस्थितिमें संतुष्ट नहीं हो और किसी दूसरी परिस्थितिकी आशा करते हो तो तुम्हें कभी भी संतोष होगा ही नहीं और न कभी तुम चित्तसे शान्तिका अनुभव करोगे।

***याद रखो*—**संसारमें कोई भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति ऐसी है ही नहीं, जो सर्वथा पूर्ण हो, जिसमें अभाव न हो। तुम जिस किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिको प्राप्त करोगे, जिससे अपनी मनोरथसिद्धि मानोगे, वही नये-नये अभावोंको और उनकी पूर्तिके लिये नयी-नयी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिकी अपेक्षा और आशाको लेकर तुम्हारे सामने आयेगी और तुम्हारी पराधीनताको, परमुखापेक्षिताको और भी बढ़ा देगी। तुम्हें नयी-नयी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितियोंकी आशाकी फाँसीमें बँधना पड़ेगा और उनकी चाहे जितनी गुलामी करनेपर भी कहीं भी कभी भी उनसे तुम्हें तृप्ति, संतोष, शान्ति और सुख नहीं मिलेगा। तुम दिन-रात उनकी आशा-प्रतीक्षामें रहोगे; परंतु आशा-प्रतीक्षाकी पूर्तिका प्रसंग आगे-से-आगे टलता जायगा, दूर-से-दूर होता चला जायगा।

***याद रखो*—**किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिमें शान्ति-सुख है ही नहीं, वे तो तुम्हारे अन्दर हैं, जो किसी दूसरी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिकी आशाका त्याग करके प्रभुके द्वारा दी हुई वर्तमान परिस्थितिका सदुपयोग करनेपर स्वयं प्रकट होते हैं।

***याद रखो*—**जो मनुष्य भगवान्‌पर विश्वास न करके प्रतिक्षण बदलनेवाली तथा मृत्युके प्रवाहमें बहती हुई वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिपर विश्वास करता है, वह कभी भी सच्ची शान्ति और सुखका मुख नहीं देख सकता। वह सदा वंचित ही रहता है। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती श्रीसीताजी

भारतीय देवियोंमें सती शिरोमणि भगवती श्रीसीताका स्थान सर्वोत्तम है। स्त्रीके शील और धैर्यकी तो श्रीसीताजीके चरित्रमें पराकाष्ठा है। यही कारण है कि भारतीय साहित्यके अधिकांश पृष्ठ श्रीसीताजीके धवल चरित्रके आज भी साक्षी बने हुए हैं। इतिहास-पुराणसे लेकर ग्राम्य गीतोंतकमें श्रीसीताजीकी समानरूपसे प्रतिष्ठा हुई है।

प्राचीन कालमें मिथिलापुरीमें सीरध्वज जनक नामके एक प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। वे शास्त्रोंके ज्ञाता, परम वैराग्यवान् तथा ब्रह्मज्ञानी थे। एक बार राजा जनक यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे। भूमि जोतते समय हलका फाल एक घड़ेसे टकराया। राजाने वह घड़ा बाहर निकलवाया। उससे राजाको अत्यन्त ही रूपवती कन्याकी प्राप्ति हुई। राजाने उस कन्याको भगवान्का दिया हुआ प्रसाद माना और अपनी औरस पुत्रीकी भाँति बड़े ही लाड़-प्यारसे उसका लालन-पालन किया। उस कन्याका नाम सीता रखा गया। जनककी पुत्री होनेके कारण वह जानकी भी कहलाने लगी। सीता शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनों-दिन बढ़ने लगी। शरीरके ही साथ रूप, लावण्य और गुणोंकी भी वृद्धि होने लगी।

धीरे-धीरे जानकीजी विवाहके योग्य हो गयीं। महाराज जनकने धनुष-यज्ञके माध्यमसे उनके स्वयंवरका आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर देश-देशके राजा मिथिलामें आये। महर्षि विश्वामित्र भी श्रीराम और लक्ष्मणके साथ यज्ञोत्सव देखनेके लिये मिथिलामें पधारे। राजा जनकको जब उनके आनेका समाचार मिला, तब वे श्रेष्ठ पुरुषों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर उनसे मिलनेके लिये गये। श्रीरामकी मनोहारिणी मूर्ति देखकर राजा विदेह (जनक) विशेष रूपसे विदेह हो गये। विश्वामित्रजीने श्रीरामके शौर्यकी प्रशंसा करते हुए महाराज जनकसे अयोध्याके दशरथनन्दनके रूपमें उनका परिचय कराया। परिचय पाकर महाराज जनकको विशेष प्रसन्नता हुई।

पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीताका प्रथम परिचय हुआ। दोनों चिरप्रेमी एक-दूसरेकी मनोहर मूर्तिको अपने हृदयमें रखकर वापस लौटे। सीताजीका स्वयंवर आरम्भ हुआ। देश-विदेशके राजा, ऋषि-मुनि, नगरवासी सभी अपने-अपने नियत स्थानपर आसीन हुए। श्रीराम और लक्ष्मण भी श्रीविश्वामित्रजीके साथ एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए। भाटोंने महाराज जनकके प्रणकी घोषणा की। शिवजीके कठोर धनुषने वहाँ उपस्थित सभी राजाओंके दर्पको चूर-चूर कर दिया। अन्तमें श्रीरामजी विश्वामित्रकी आज्ञासे धनुषके समीप गये। उन्होंने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके बड़े ही लाघवसे धनुषको उठा लिया। एक बिजली-सी कौंधी और धनुष दो टुकड़े होकर पृथ्वीपर आ गया। प्रसन्नताके आवेग और सखियोंके मंगलगानके साथ सीताजीने श्रीरामके गलेमें जयमाला डाली। महाराज दशरथको जनकका आमन्त्रण प्राप्त हुआ। श्रीरामके साथ उनके शेष तीनों भाई भी जनकपुरमें विवाहित हुए। बारात विदा हुई तथा पुत्रों और पुत्रवधुओंके साथ महाराज दशरथ अयोध्या पहुँचे।

श्रीरामको राज्याभिषेकके बदले अचानक चौदह वर्षका वनवास हुआ। सीताजीने तत्काल अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। श्रीरामके द्वारा अयोध्यामें रहनेके आग्रहके बाद भी सीताजीने सभी सुखोंको तृणके समान त्याग दिया और वे श्रीरामके साथ वन गयीं। सीताजी वनमें हर समय श्रीरामको स्नेह और शक्ति प्रदान करती हैं। श्रीरामका अयन (रामायण) महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षासे प्रारम्भ होकर जनकपुरमें शक्तिवरणपर समाप्त हुआ। वनमें रावणके द्वारा सीता-हरण करके उन्हें समुद्रके पार लंका ले जाना रामायणमें नया मोड़ लाता है। लंका-प्रवास भगवती सीताके धैर्यकी पराकाष्ठा है। समुद्रको पार करके श्रीरामने रावणके साथ अजेय राक्षसोंका संहार करके अपनी सीताशक्तिको पुनः प्राप्त किया। भगवती सीताके कारण ही जनकपुरवासियोंको श्रीरामका दर्शन और लंकावासियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ।

इस वर्ष २४ फरवरीको भगवती सीताजीका प्राकट्य-दिवस है।

अनमोल वचन—

परमात्मा परम दयालु हैं

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

✿ ईश्वरका दण्ड भी वरके सदृश होता है। ईश्वरके न्यायसे फरियादी और असामी दोनोंका ही परिणाममें हित और उद्धार होता है, यही उसकी विशेषता है। परम दयालु परमात्माके कानूनके अनुसार जो अपराधी अपनी भूलको सच्चे दिलसे स्वीकार करता हुआ भविष्यमें फिर अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा करता है और सच्चे हृदयसे ईश्वरके शरण होकर सर्वस्वसहित अपनेको उसके चरणोंमें अर्पण कर देता है एवं ईश्वरकी कड़ी-से-कड़ी आज्ञाको—उसके भयानक-से-भयानक विधानको, उसके प्रत्येक न्यायको सानन्द स्वीकार करता तथा उसे पुरस्कार समझता है, साथ ही अपने किये हुए अपराधोंके लिये क्षमा नहीं चाहकर दण्ड ग्रहण करनेमें खुश होता है। ऐसे सरल-भावसे सर्वस्व-अर्पण करनेवाले शरणागत भक्तको भगवान् अपराधोंसे मुक्त करके उसे अभय कर देते हैं।

✿ ईश्वरकी दया अपार है, परंतु जो जितनी मानता है, उतनी ही दया उसको फलती है, इसलिये उस ईश्वरकी जितनी अधिक-से-अधिक दया तुम अपने ऊपर समझ सको, उतनी ही समझनी चाहिये। तुम्हारी कल्पना जितनी अधिक होगी, तुम्हें उतना ही अधिक लाभ होगा।

✿ जबतक ईश्वरके विधानमें सन्तोष नहीं है और सांसारिक सुख-दुःखादिकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक होता है, तबतक मनुष्यने भगवान्‌की दयाके तत्त्वको वास्तवमें समझा ही नहीं है। जब ईश्वरको कर्मोंके अनुसार फल देनेवाला, न्यायकारी, परम प्रेमी, परम हितैषी, परम दयालु और सुहृद् समझ लिया जायगा, तब उनके किये हुए सभी विधानोंमें आनन्दका पार न रहेगा।

✿ परमात्माकी दया तो समानभावसे सबपर सदा ही है, परंतु मनुष्य जब परमात्माकी शरण हो जाता है, तब ईश्वर उसपर विशेष दया करते हैं। जैसे सुनार सुवर्णको आगमें तपाकर पवित्र बना लेता है, वैसे ही परमात्मा अपने भक्तको अनेक प्रकारकी विपत्तियोंके द्वारा तपाकर पवित्र बना लेते हैं।

✿ ईश्वरकी दयाके लिये क्या कहा जाय? सम्पूर्ण जीवोंके मस्तकपर उनका निरन्तर हाथ है, परंतु अभागे जीव उस हाथको हटाकर परे कर देते हैं! जब यह जीव कोई बुरा काम करनेके लिये तैयार होता है, तो प्रायः ही उसीके हृदयसे यह आवाज आती है कि 'यह बुरा काम है।' इस प्रकारकी जो चेतावनी है, यह ईश्वरका मस्तकपर हाथ है। ईश्वर उसको समयपर चेता देते हैं। मालूम होता है, मानो हृदयस्थ कोई पुरुष निषेध करता है कि यह काम बुरा है, परंतु काम या लोभके वश होकर ईश्वरकी आज्ञाकी अवहेलना करके बुरे काममें प्रवृत्त हो ही जाता है, यही उस कृपासिन्धुकी कृपाकी अवहेलना करना है अर्थात् अपने मस्तकपर जो उनका हाथ है, उसको परे हटाना है।

✿ परमात्माका विश्वास ज्यों-ज्यों बढ़ता जायगा, त्यों-ही-त्यों सारे दोष स्वयमेव नष्ट होते चले जायँगे। सर्वव्यापी परमेश्वरमें जितना अधिक विश्वास होगा, उतना ही आत्मा अधिक उन्नत होगा। जैसे सूर्यके उदय होनेके पूर्व उसके आभाससे ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही परमात्माकी शरण ग्रहण करनेसे पहले ही उसपर विश्वास होते ही पाप नष्ट हो जाते हैं। सब समय सब जगह परमात्माके स्थित होनेका विश्वास हो जानेपर मनुष्यसे कभी कहीं भी पाप नहीं हो सकते।

✿ अपनी कल्पनामें ईश्वरको जो जैसा समझता हो, उसे वैसे ही स्वरूप या भावका निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। ईश्वरके सम्बन्धमें इतनी बातें अवश्य ही दृढ़तापूर्वक हृदयमें धारण कर लेनी चाहिये कि ईश्वर है, सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापी है, सर्व-दिव्य-गुण-सम्पन्न है, सर्वज्ञ है, सनातन है, नित्य है, परम प्रेमी है, परम सुहृद् है, परम आत्मीय है और परम गुरु है। इन गुणोंमें उससे बढ़कर या उसकी जोड़ीका दूसरा जगत्‌में न कोई हुआ, न है और न हो सकता है।

पंचमहायज्ञ

(गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

अग्निर्वै देवानां मुखम्। अग्निमुखाः वै देवाः।

अग्नि परमात्माका मुख है। अग्निद्वारा भगवान् आरोगते हैं। घरमें तुम ठाकुरजीको भोग धरो, परंतु अग्निमें आहुति न दो, तबतक प्रभु तृप्त होते नहीं। अग्निमें आहुति देनी ही चाहिये। शास्त्रमें लिखा है कि घरमें रसोई हो तो उसमें अनेक जीवोंकी हिंसा भी होती है। रसोई बनानेमें अनेक जीव मरते हैं और उस हिंसाका पाप अन्नमें भी आ जाता है। अन्नद्वारा यह पाप खानेवालेके माथे आता है। अन्नसे मन न बिगड़े, इसलिये अन्नको शुद्ध करना बहुत जरूरी है। अन्नको शुद्ध करनेके लिये अग्निमें आहुति दी जाती है।

गृहस्थके घरमें पंच महायज्ञ होना चाहिये। देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और भूतयज्ञ—ये पाँच महायज्ञ कहे गये हैं।

देवता वर्षा करते हैं, उससे अन्नकी उत्पत्ति होती है। इसलिये उनको आहुति देनी आवश्यक है। इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओंको आहुति देना, उनका पूजन करना देवयज्ञ कहा जाता है।

उपनिषद्, महाकाव्य, इतिहास-पुराण आदि अमूल्य ज्ञानका उत्तराधिकार हमें ऋषियोंने दिया है। ऋषियोंके हमारे ऊपर अनन्त उपकार हैं। प्राचीनकालमें गृहस्थ प्रथम अरण्यमें जाकर ऋषियोंको जिमाता और तब पीछे ही स्वयं भोजन करता। यह ऋषियज्ञ कहलाता है।

हमारे ऊपर पूर्वजोंका बड़ा ऋण है। यह शरीर पित्रीश्वरोंका आभारी है और इसीसे रोज पितृश्राद्ध करना गृहस्थका धर्म है। इसको पितृयज्ञ कहते हैं।

भूखे मनुष्योंको भोजन देनेको मानवयज्ञ कहते हैं। आँगनमें कोई गरीब आये, कोई भिखारी आये, कोई साधु-ब्राह्मण आये, आस-पास पड़ोसमें कोई भूखा हो— उन सबको जिमाकर जीमना गृहस्थका धर्म होता है।

इस जगत्के प्रत्येक प्राणीके प्रति मनुष्यका कुछ धर्म है। पशु-पक्षी आदि मूक प्राणियोंको अन्नसे तृप्त करनेको भूतयज्ञ कहते हैं। आकाश, तेज, जल, वायु और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत कहलाते हैं। प्रत्येकके एक-एक अधिष्ठाता देव हैं। इन देवोंका पूजन करना, इनके लिये आहुति देनेको भी भूतयज्ञ कहा जाता है।

प्रत्येक गृहस्थको ये यज्ञ रोज करने ही चाहिये। कितने ही लोग ठाकुरजीको थाल तो धरते हैं, परंतु अग्निमें आहुति देते नहीं। कथा सुननेके पीछे रोज अग्निमें आहुति दो। कदाचित् तुमको ऐसा लगता होगा कि महाराज! आप कहते हैं, परंतु हमको तो कोई मन्त्र नहीं आता। तुमको 'हरे राम, हरे कृष्ण' बोलना तो आता है न? वही बोलो। भातमें थोड़ा घी डालो, भातको घीयुक्त करके अग्निदेवको जिमाओ। अग्निकी ज्वाला ठाकुरजीकी जीभ है। जैसे माँ बहुत प्रेमसे बालकके मुखमें ग्रास-ग्रास देती है, वैसे ही तुम भी प्रेमसे ऐसी भावना रखो कि मैं अपने ठाकुरजीके मुखमें देता हूँ। ब्राह्मण पवित्र वेदमन्त्र बोलकर परमात्माके मुखमें आहुति देते हैं, प्रभुको जिमाते हैं।

स्मार्त वैश्वानरको—अग्निदेवको आहुति देनेके पीछे भगवान्को भोग धरते हैं। स्मार्त लोग ऐसा मानते हैं कि अग्निमें आहुति देनेसे ही अन्न शुद्ध होता है और अन्न शुद्ध हो जाय तभी परमात्माको अर्पण करना चाहिये। अशुद्ध अन्न भगवान्को क्यों अर्पण हो?

वैष्णवोंकी ऐसी भावना होती है कि ठाकुरजी न आरोगें, तबतक अग्निदेव भोजन करते नहीं। इससे वैष्णव प्रथम भगवान्को भोग धरते हैं और पीछे अग्निमें आहुति देते हैं।

दो-मेंसे कोई भी सिद्धान्त अपनाओ। भगवान्को भोग धरके अग्निमें आहुति दो अथवा प्रथम अग्निमें आहुति देकर पीछे भगवान्को भोग धरो। दोनों सिद्धान्तोंमें अग्नि-उपासना आवश्यक है। अग्नि और सूर्य—ये दो देव प्रत्यक्ष हैं। अरे, पेटमें भी अग्नि है, इसीलिये मानव जीवित रहता है। पेटमें रहनेवाले अग्निदेव शान्त हों तो पीछे '**अच्युतं**

केशवम्' हो जाता है, मरण हो जाता है। अग्निके आधारसे जो रसोई हुई, उसमेंसे अग्निमें आहुति दिये बिना जो खाता है, वह पाप खाता है। जो परमात्माको भोग धरता नहीं, अग्निमें आहुति देता नहीं और स्वयं खा लेता है, वह अन्न खाता नहीं, पाप खाता है। जो केवल स्वयंके लिये राँधकर खाता है, वह पाप खाता है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३।१३)

जब अग्निमें आहुति दो तब भगवान्का स्मरण करो और ऐसा भाव रखो कि ठाकुरजीको जिमाता हूँ। फिर वह अन्न अन्न नहीं रहता, अमृत बन जाता है। खाना पाप नहीं है, परंतु भगवान्को अर्पण किये बिना खाना पाप है। भगवान्को नैवेद्य ग्रहण कराये बिना खाना नहीं। नारायणका ही है और नारायणको ही अर्पण करना है। प्रेमसे अर्पण करोगे तो भगवान् प्रसन्न होंगे।

ईश्वरको तो कोई अपेक्षा नहीं। वे तो स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। ठाकुरजीको ऐसी इच्छा नहीं कि वैष्णव मुझे भोग लगाये। ठाकुरजी पूर्ण निष्काम हैं। भगवान् तो भक्तोंको राजी करनेके लिये आरोगते हैं। भगवान्के घर क्या कमी है? यह सब कुछ उनका ही दिया हुआ है। भगवान्को भोग न धरो, उससे भगवान् भूखे रहनेवाले नहीं, परंतु तुमको किसी भी दिन भूखे रहनेका प्रसंग आ जायगा। इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें।

भगवान्को भूख लगती ही नहीं। भगवान् तो तुम्हारे भावको देखते हैं। अपने शरीरसे जितना प्रेम रखते हो, उससे विशेष प्रेम भगवान्में रखो। घरमें कोई जीमनेवाला न हो तो भी भगवान्के लिये रसोई बनाओ। जिस घरमें भगवान्के लिये रसोई होती है, उस घरमें अन्नपूर्णा विराजती हैं, उस घरमें अन्नकी कभी कमी नहीं पड़ती।

'ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं'

(श्रीरामधारी सिंहजी 'दिनकर')

ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं,
है अपना ये त्यौहार नहीं।
है अपनी ये तो रीत नहीं,
है अपना ये व्यवहार नहीं।

धरा ठिठुरती है सर्दी से,
आकाश में कोहरा गहरा है।
बाग बाजारों की सरहद पर,
सर्द हवा का पहरा है।

सूना है प्रकृति का आँगन,
कुछ रंग नहीं, उमंग नहीं।
हर कोई है घर में दुबका हुआ,
नववर्ष का ये कोई ढंग नहीं।

चंद मास अभी इंतजार करो,
निज मन में तनिक विचार करो।
नये साल नया कुछ हो तो सही,
क्यों नकल में सारी अक्ल बही।

उल्लास मन्द है जन-मन का,
आयी है अभी बहार नहीं।
ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं,
है अपना ये त्यौहार नहीं।

ये धुंध कुहासा छँटने दो,
रातों का राज्य सिमटने दो।
प्रकृति का रूप निखरने दो,
फागुन का रंग बिखरने दो।

प्रकृति दुल्हन का रूप धार,
जब स्नेह-सुधा बरसायेगी।
शस्य-श्यामला धरती माता,
घर-घर खुशहाली लायेगी।

तब चैत्र शुक्ल की प्रथम तिथि
नववर्ष मनाया जायेगा।
आर्यावर्त की पुण्यभूमि पर
जयगान सुनाया जायेगा।

युक्ति-प्रमाण से स्वयं सिद्ध,
नववर्ष हमारा हो प्रसिद्ध।
आर्यों की कीर्ति सदा-सदा,
नववर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा।

अनमोल विरासत के धनिकों को,
चाहिये कोई उधार नहीं।

ये नववर्ष हमें स्वीकार नहीं,
है अपना ये त्यौहार नहीं,
है अपनी ये तो रीत नहीं,
है अपना ये त्यौहार नहीं।

प्रेमका स्वरूप

(नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रेम वस्तुतः वाणीकी वस्तु नहीं है; जिसका वर्णन वाणीसे हो सकता है, वह तो प्रेमका अत्यन्त स्थूल बाहरी स्वरूप है। प्रेम हृदयमें रहता है और प्रेमीको प्रेममय बना डालता है।

भगवान् श्रीरामने श्रीजानकीजीके पास यह प्रेमसन्देश भेजा था—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

'तुम्हारे और मेरे प्रेमका तत्त्व केवल एक मेरा मन जानता है और वह मन सदा तेरे पास रहता है।' प्रेममें स्वार्थके लिये जरा-सी भी जगह नहीं है। जहाँ कुछ भी पानेकी वासना है, वहाँ प्रेमके पवित्र आसनको काम कलंकित कर रहा है। प्रेममें देना-ही-देना है, लेने या पानेकी कल्पना भी नहीं है। प्रेम सदा बढ़ता ही रहता है। प्रेमी कभी यह मान ही नहीं सकता कि मुझमें पूरा प्रेम है। वह सदा अपनेमें त्रुटि ही देखा करता है और अनन्यभावसे प्रेमास्पदके प्रति सदा हृदयको आकृष्ट रखता है। गुण देखकर अथवा किसी आशासे जो प्रेम होता है, वह गुणोंका ह्रास देखते ही अथवा आशाभंगकी आशंका होते ही घट जाता है या नष्ट हो जाता है। वह वास्तवमें प्रेम नहीं है। वहाँ काम ही प्रेमके नामपर राज्य कर रहा है।

छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय॥

अन्यत्र कहा गया है—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

'ध्वंसका कारण वर्तमान होनेपर भी जो सर्वथा ध्वंसरहित है, इस प्रकारके परस्परके भावको प्रेम कहते हैं अर्थात् प्रेमास्पदका धन नष्ट हो गया, रूप जाता रहा, उसके सद्गुण दुर्गुणोंमें परिणत हो गये, उसने आदर-सत्कार या प्रेम करना छोड़ दिया, वह पद-पदपर तिरस्कार करता है, हमारा अपमान करके हमारे ही सामने दूसरेको आदर देता है, उसमें हजारों दोषोंका उदय हो गया है, ऐसी अवस्थामें प्रेम नष्ट होना ही चाहिये।'

संसारमें ऐसी अवस्था हो ही जाती है; परंतु इस स्थितिमें जो प्रेम कभी घटता नहीं, बल्कि दिनोंदिन बढ़ता ही रहता है, उसीका नाम यथार्थ प्रेम है।

रसखानि कहते हैं—

बिनु जोबन गुन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
सुद्ध कामनाते रहित, प्रेम सकल 'रसखानि'॥
अति सूच्छम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर।
प्रेम कठिन सबते सदा नित इकरस भरपूर॥
रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान।
सदा एकरस बढ़त नित, सुद्ध प्रेम 'रसखान'॥

प्रेमकी बाढ़ कभी रुकती ही नहीं—इस चन्द्रकलाके लिये कभी पूर्णिमा नहीं होती।

प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुबेष।
पै पूनौ यामें नहीं, तातें कबहुँ न सेष॥

और ऐसा प्रेम वस्तुतः केवल भगवान्में उनके प्रेमी भक्तका ही हो सकता है। देवर्षि नारदजी ऐसे प्रेमका लक्षण बतलाते हुए कहते हैं—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्। प्रकाश्यते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नसूक्ष्मतरमनुभवरूपम्। तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति तदेव चिन्तयति॥

(नारदभक्तिसूत्र ५१—५५)

अर्थात् 'प्रेमके स्वरूपका उसी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता, जैसे गूँगा स्वादका वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा प्रेम किसी विरले भाग्यवान् अधिकारी (परम विषय-विरागी भगवदनुरागी) भक्तमें ही प्रकट होता है। यह प्रेम गुणोंसे रहित है, इसमें कामनाकी गन्ध नहीं है, हर क्षण बढ़ता ही रहता है, इसका प्रवाह सदा अटूट रहता है, यह अतिसूक्ष्म है, केवल अनुभवसे जाना जा सकता है। इस प्रेमको पाकर भक्त केवल प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही

सुनता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है।' वहाँ प्रेम और प्रेमास्पदमें कोई अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि—

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप।
एक होइ द्वैमें लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

इसी प्रेमभावको प्राप्त गोपियोंकी दशाका वर्णन करते हुए भक्त कविगण क्या कहते हैं, कुछ नमूने देखिये—

(१)

जित देखों तित स्याममई है।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा, स्याम गगन घनघटा छई है॥
सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है।
मैं बौरी, की लोगन ही की स्याम पुतरिया बदल गई है॥
चंद्रसार रबिसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है।
नीलकंठको कंठ स्याम है, मनो स्यामता बेल बई है॥
श्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीपसिखापर स्यामतई है।
नर-देवनकी कौन कथा है, अलख-ब्रह्म-छबि स्याममई है॥

(२)

कानन दूसरो नाम सुनै नहि, एकहि रंग रँगो यह डोरो।
धोखेहुँ दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरो॥
ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै हम कैसेहुँ टेक तजै नहिं भोरो।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाड़ि निहारति गोरो॥

(३)

पहले ही जाय मिले गुनमें स्त्रवन, फेरि
रूपसुधा मधि कीनो नैनहू पयान है।
हँसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि,
सुघराई, रसिकाई मिली मति पय-पान है॥
मोहि-मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो,
'हरीचंद' भेद न परत पहचान है।
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हियमें न जानि परै कान्ह है कि प्रान है॥

(४)

बाटनमें घाटनमें बीथिनमें बागनमें,
बृच्छनमें बेलिनमें बाटिकामें बनमें।
दरनमें दिवारनमें देहरी दरीचनमें,
हीरनमें हारनमें भूषनमें तनमें॥
काननमें कुंजनमें गोपिनमें गायनमें,
गोकुलमें गोधनमें दामिनीमें घनमें।
जहाँ-जहाँ देखैं तहाँ स्याम ही दिखाई देत,
सालिगराम छाइ रह्यो नैननमें मनमें॥

(५)

कहि न जाय मुखसौं कछू स्याम-प्रेमकी बात।
नभ जल थल चर अचर सब स्यामहि स्याम लखात॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल।
अपनीहू सुधि ना रही, रह्यौ एक नँदलाल॥
को कासों, केहि बिधि, कहा कहै हृदै की बात।
हरि हेरत हिय हरि गयो, हरि सरबत्र लखात॥

(६)

'नारायण' जाके हृदय सुंदर स्याम समाय।
फूल पात फल डारमें ताको वही लखाय॥
दर दिवार दरपन भये, जित देखों तित तोहि।
काँकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोहि॥

इस तरह कृष्णमय जगत् देखनेवाली गोपियोंकी एक गाथा इस प्रकार है—दिन-रात श्रीकृष्ण-चर्चामें लगी हुई गोपियोंसे एक दिन एक गोपीने पूछा—'बहिन! क्या कहूँ, नन्दबाबा गोरे, यशोदाजी गोरी, दाऊजी गोरे, घरभरमें सभी गोरे, हमारे श्यामसुन्दर ही साँवरे कैसे हो गये?' इसपर एक कृष्णदर्शनमयी गोपीने कहा—'बहिन! क्या तू इतना भी नहीं जानती—अरी!

कजरारो अँखियानमें बस्यो रहत दिन-रात।
पीतम प्यारो हे सखी, तातें साँवर गात॥

कितने रहस्यकी बात है, गोपीकी कजरारी आँखोंमें केवल श्रीकृष्ण ही बसते हैं, जगत्में उसकी आँखें और किसीको देखती ही नहीं। कुछ लोग कहा करते हैं कि गोपियाँ भगवान्को सर्वव्यापक नहीं मानती थीं। उनका यह कहना ठीक ही है; क्योंकि गोपियाँ एकमात्र भगवान्को ही देखती थीं। जब दूसरी कोई वस्तु ही नहीं रही, तब कौन किसमें व्यापक हो?

इस प्रकार श्रीकृष्णके दिव्य प्रेममें डूबी हुई गोपियोंके चरण-पंकज-परागको बार-बार नमस्कार है।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

[काम—कारण और निवारण]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

पतनकी सीढ़ीका पहला डंडा है—अपवित्र विचार।

गीताके ये श्लोक मैंने एक-दो बार नहीं, अनेकों बार पढ़े होंगे—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(२। ६२-६३)

विषयोंका ध्यान किया नहीं कि पतनका गड़हा तैयार! अपवित्र विचारोंका चिन्तन किया नहीं कि गये!

× × ×

जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ कि पतनका सूत्रपात अपवित्र विचारोंसे होता है।

फिर भी, मैं दिन-रात, आठ पहर, चौंसठ घड़ी अपवित्र विचारोंसे अपनेको घेरे रखता हूँ।

और यही कारण है कि मैं कदम-कदमपर गिरता हूँ, पग-पगपर ठोकरें खाता हूँ।

× × ×

लोग भले ही मुझे सदाचारी मानते रहें, आदर्श कहकर पुकारते रहें और इन उपाधियोंसे विभूषित होनेपर मैं भले ही अहंकारसे फूलकर कुप्पा होता रहूँ, पर असलियत क्या है, इसका पता तो अन्तर्यामीको छोड़कर और किसे है?

वस्तुस्थितिका पता और किसीको रहता तो वह निश्चय ही मेरी ओर उँगली उठाकर कहता—

उसकी बातोंसे समझ रक्खा है तुमने उसे खिज्र,
उसके पावोंको तो देखो कि किधर जाते हैं!

× × ×

हृदयकी गहन गुफामें उतरकर जब मैं अपने पिछले जीवनपर दृष्टिपात करता हूँ, तो एक सर्द आह बरबस निकल जाती है—

'मो सम कौन कुटिल खल कामी!'

कितनी बार गिरा हूँ, कहाँ-कहाँ गिरा हूँ, कब-कब गिरा हूँ, इसका भी कोई पार है!

तुलसी बाबाके शब्दोंमें—

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ।
बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥

× × ×

पत्नी कभी-कभी भावविभोर होकर गाती है—

भगवन तुम्हारी यादमें जाऊँ कहाँ कहाँ?
चौदह भुवनमें विराजते पाऊँ कहाँ कहाँ?

× × ×

दुनियाके पापियोंमें मुकुट मुझको समझ लो,
नस-नसमें भरा पाप, छिपाऊँ कहाँ कहाँ?....

उस समय मुझे अपनी दशापर बड़ा तरस आता है।

× × ×

सचमुच यहाँ तो नस-नसमें पाप ठुँसा पड़ा है, मलिन वासनाएँ भरी पड़ी हैं, अपवित्र विचार डेरा जमाये बैठे हैं और मैं रात-दिन इन्हींके चक्करमें फँसा डूबता-उतराता रहता हूँ।

× × ×

खूब जानता हूँ कि कामके हाथका खिलौना बनना बहुत बुरा है, विकारग्रस्त होना गन्दी बात है। कभी-कभी उससे विरत होनेकी भी चेष्टा करता हूँ, भूले-भटके कभी सफल भी हो जाता हूँ, परंतु ज्यादातर बाजी उसीके हाथ रहती है!

मैं सहज ही गिर जाता हूँ।

× × ×

जब कभी अपने पतनपर विचार करने बैठता हूँ तो चकित हो उठता हूँ कि किस तरह पलक मारते कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचा!

कितनी छोटी-सी बातने कितने गहरे ले जाकर डुबा दिया!

तभी यदि अपवित्र विचारको रोक लिये होता,

उसपर नियन्त्रण कर लेता, उसे पनपनेका मौका नहीं देता, उसे इन्द्रियाँ न सौंपता, तो गिरनेकी नौबत ही क्यों आती?

और यही तो नहीं हो पाता!

ऐन मौकेपर ही चूक जाता हूँ।

फिर तो गिरना अवश्यम्भावी है।

जवानीका रास्ता तो चिकना होता ही है, प्रौढ़ और बूढ़े भी वासनासे पीड़ित होते देखे जाते हैं।

और आजके दूषित वातावरणमें, जब यत्र-तत्र-सर्वत्र अपवित्र विचारोंकी अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है, कौन उससे अछूता रह पाता है?

× × ×

आप यदि अपवित्र विचारोंसे प्रभावित नहीं होते, मलिन वासनाओंसे क्षुब्ध नहीं होते, आकर्षणके चक्करमें नहीं फँसते, मनोज-बाणोंसे व्यथित नहीं होते, तो आप प्रणम्य हैं, वन्दनीय हैं। आपके पावन चरणोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम!

× × ×

जहाँतक मेरा सवाल है, अपना तो अंग-अंग विषय-वासनासे, अपवित्र विचारोंसे सराबोर है।

यहाँ तो इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सभी विषयोंकी चेरी हैं।

पल-पल, क्षण-क्षण विकारोंकी ही आराधना करता रहता हूँ।

हर घड़ी रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शके लिये ही आकुल रहता हूँ!

× × ×

एक एक इन्द्रिय विषय लोलुप मीन मतंग।
मरत तुरंत अनाथ सम, भृंग कुरंग पतंग॥

एक-एक इन्द्रिय ही जब बुरी तरह मारती और जलाती है, तब यहाँ तो सभी इन्द्रियाँ एक साथ विषयोंके लिये व्याकुल रहा करती हैं!

उसका नतीजा सामने है!

× × ×

आँखोंका यह हाल है—

जिधर डाली नजर देखी उधर ही एक नयी सूरत।
दिले नादाँ मचलता है कि मैं तो बस यही लूँगा॥

नैना वैरी, रूपकी प्यास बुझानेके लिये हरदम छटपटाया करते हैं।

× × ×

'आँखोंमें अबला, कानोंमें तबला' बसा हुआ है!

विषयरससे ओत-प्रोत कहानियाँ सुननेके लिये मेरे कान आठ पहर चौंसठ घड़ी बेचैन रहते हैं। रसीले गानेकी कोई भी कड़ी कानमें पड़ भर जाय कि ऐसा लगता है कि इससे आनन्ददायक वस्तु संसारमें और होगी ही क्या!

× × ×

निगोड़ी जीभकी तो बात ही क्या बताऊँ? पूड़ी और हलुआ, चमचम और रसगुल्ला, मिठाई और रबड़ी, मिर्च और मसाला, अचार और चटनी चाटनेके लिये वह रात-दिन जमीन-आसमानके कुलावे एकमें मिलाया करती है!

× × ×

गुलाब और केवड़ा, इत्र और हिनाकी गमक मेरी नासिकाको परम प्रिय है। चमेली और रजनीगन्धा, स्नो और क्रीमकी खुशबूसे दिल बाग-बाग हो उठता है!

× × ×

शैय्या मेरी कोमल होनी चाहिये। रजाई हो, गद्दा हो, तकिया हो। फूलोंसे सजी हुई रहे तो और उत्तम।

शरीरका रोम-रोम, त्वचाका कण-कण कोमल और स्निग्ध प्राणी-पदार्थोंके स्पर्शके लिये रात-दिन आकुल रहता है!

× × ×

मतलब, मेरा अंग-अंग कामोत्तेजक प्राणी-पदार्थोंके संगके लिये हरदम बेचैन रहता है। भोग-विलासकी वस्तुएँ मुझे परम प्रिय हैं। वासनाको उद्दीप्त करनेवाले प्राणी-पदार्थ मुझे सबसे अच्छे लगते हैं। यही जी करता है कि आठ पहर चौंसठ घड़ी विषय-भोगकी ही सरितामें अवगाहन किया करूँ।

मेरा खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना,

हँसना-गाना, खेलना-कूदना—सब कुछ विलास-वासनासे ओत-प्रोत रहता है। ऐसा लगता है, मानो विलास ही मेरे जीवनका एकमात्र लक्ष्य है। रात-दिन मैं उसीमें डूबता-उतराता रहता हूँ!

× × ×

बचपनसे सुनता आ रहा हूँ कि ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, इन्द्रियोंको काबूमें रखना चाहिये, कामवासनाका शिकार नहीं बनना चाहिये।

अन्तरात्मासे भी ऐसा ही आदेश मिलता रहता है।

वेद और शास्त्रमें, पुराण और कुरानमें, बाइबिल और धम्मपदमें ऐसा ही पढ़ा भी है।

मौके-बेमौके स्वयं भी ऐसा प्रवचन किया है।

परंतु, इन बातोंको जीवनमें कहाँ उतार पाया हूँ?

× × ×

और जबतक ज्ञान आचरणमें नहीं आता, तबतक उसका मूल्य ही क्या?

उपदेश जबतक जीवनमें नहीं उतरता, शरीरके रोम-रोममें नहीं भिदता, तबतक उसकी सार्थकता ही क्या?

पढ़ना गुनना चातुरी, तीनों बात सहल्ल।
काम दहन, मन बस करन, गगन चढ़न मुशकिल्ल॥

× × ×

बात यह है कि यह चढ़ाई बहुत कठिन है। इस राहमें बड़ी जल्दी दम फूलने लगता है।

इसके विपरीत नीचेका रास्ता बड़ा चिकना है। उसपर पैर फिसलते देर नहीं लगती। क्षणिक सुखका आकर्षण मेरे-जैसे सहज पतनशील व्यक्तियोंको पलभरमें गिरा देता है।

बड़ा कँटीला रास्ता है यह। पग-पगपर ठोकर लगनेकी नौबत है, पता नहीं इसके राही किस क्षण लुट जायँ!

परंतु, इसका अर्थ यह तो नहीं ही है कि पहलेसे ही हताश होकर इस मार्गपर पैर ही न रखे जायँ। अथवा कभी गिर जानेपर फिरसे उठनेकी कोशिश ही न की जाय।

बापूने एक बार इसका बड़ा ही सटीक उत्तर दिया था।

× × ×

बात यह हुई कि ब्रह्मचर्यके अपने अनुभवोंकी चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा—

'ब्रह्मचर्यकी पूर्ण अवस्थाको मैं अभी नहीं पहुँचा। यह अवश्य है कि वहाँतक पहुँचनेका मेरा प्रयत्न निरन्तर जारी है। तनपर तो मैंने अपना काबू कर भी लिया है, जाग्रत् अवस्थामें मैं सावधान रह सकता हूँ। वचनके संयमका पालन करना भी ठीक-ठीक सीखा है, पर विचारपर अभी मुझे बहुत कुछ काबू करना बाकी है। जिस समय जिस बातका विचार करना हो, उस समय केवल एक उसीके विचार आनेके बदले दूसरे विचार भी आ जाया करते हैं। इसमें विचारोंमें परस्पर द्वन्द्व हुआ करता है। फिर भी जाग्रदवस्थामें मैं विचारोंको परस्पर टक्कर लेनेसे रोक सकता हूँ। मेरी यह स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार तो आ ही नहीं सकते, मगर निद्रावस्थामें विचारोंपर मेरा काबू कम रहता है। नींदमें अनेक प्रकारके विचार आते हैं, अकल्पित सपने भी आते ही रहते हैं और कभी-कभी इसी देहकी की हुई बातोंकी वासना भी जाग्रत् हो उठती है। वे विचार जब गन्दे होते हैं, तब स्वप्नदोष भी होता है। यह स्थिति विकारी जीवनकी ही हो सकती है।'

× × ×

इस विवरणको पढ़कर एक सज्जनने यह सोचकर ब्रह्मचर्यपालनकी आशा छोड़ दी कि गाँधीजीके भीष्म प्रयत्नोंके बाद भी उनकी यदि यह हालत है कि स्वप्नमें अपवित्र विचार आ जाते हैं, तो हम किस खेतकी मूली हैं!

× × ×

महात्माजीने इसका जो उत्तर दिया, वह स्वर्णाक्षरोंमें अंकित करनेयोग्य है। आपने लिखा—

'केवल इतना ही जानना संसारके लिये यथेष्ट क्यों न हो कि मैं सच्चा शोधक हूँ, पूरा जाग्रत् हूँ, सतत प्रयत्नशील हूँ और विघ्न-बाधाओंसे डरता नहीं? ऐसी दलील ही क्यों दी जाय कि मेरे समान व्यक्ति जब बुरे विचारोंसे न बच सका, तो दूसरोंके लिये कोई आशा ही नहीं है? क्यों न सोचा जाय कि वह गाँधी, जो एक समय कामवासनामें डूबा हुआ था, आज यदि अपनी

पत्नीके साथ भाई या मित्रके समान रह सकता है और संसारकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियोंको बहिन या बेटीके रूपमें देख सकता है, तो नीच-से-नीच और पतित व्यक्तिके लिये भी उठनेकी आशा है। यदि ईश्वरने इतने विकारोंसे भरे हुए मनुष्यपर अपनी दया दिखायी तो निश्चय ही वह दूसरोंपर भी दया दिखायेगा ही। जो मेरी न्यूनताओंको जानकर पीछे हट पड़े, वे कभी आगे बढ़े ही नहीं थे। यह तो झूठी साधुता कही जायगी, जो पहले ही धक्केमें चूर हो गयी। सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे ऐसे सनातन सत्य मेरे समान अपूर्ण मनुष्योंपर निर्भर नहीं करते। उनका अडिग आधार होती है उन अनेक महापुरुषोंकी अडिग तपश्चर्या, जिन्होंने उनके लिये प्रयत्न किया और उनका सम्पूर्ण पालन किया।'

× × ×

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

(६।५)

सन्त विनोबाने इसकी व्याख्या करते हुए कितना सुन्दर कहा है—

'मैं जड़ हूँ, व्यवहारी हूँ, सांसारिक जीव हूँ'— ऐसा कहकर अपने आसपास बाड़ मत लगाओ। मत कहो कि 'मेरे हाथोंसे क्या होगा?' तुम तो आगे बढ़नेकी, ऊपर चढ़नेकी हिम्मत रखो।

'ऐसी हिम्मत रखो कि मैं अपनेको अवश्य ऊपर उठा ले जाऊँगा। यह मानकर कि मैं क्षुद्र सांसारिक जीव हूँ, मनकी शक्तिको मार मत डालो। कल्पनाके पंख काट मत डालो। अपनी कल्पनाको विशाल बनाओ। चण्डूलका उदाहरण अपने सामने रखो। प्रात:काल सूर्यको देखकर चण्डूल कहता है कि मैं सूर्यतक उड़ जाऊँगा। वैसा हमें बनना चाहिये। अपने दुर्बल पंखोंसे चण्डूल बेचारा कितना ही ऊँचा उड़े, तो भी वह सूर्यतक कैसे पहुँचेगा? परंतु, अपनी कल्पनाशक्तिद्वारा वह अवश्य सूर्यको पा सकता है।'

'हमारा आचरण इससे उलटा होता है। हम जितने ऊँचे जा सकते थे, उतने भी न जाकर अपनी कल्पना और भावनाओंपर रुकावटें डाल अपनेको और नीचे गिरा लेते हैं। जो शक्ति प्राप्त है, उसे भी अपनी हीन भावनासे नष्ट कर लेते हैं। जहाँ कल्पनाके ही पाँव टूट गये तो फिर नीचे गिरनेके सिवा क्या गति होगी? अत: कल्पनाका रुख हमेशा ऊपरकी ओर होना चाहिये। कल्पनाकी सहायतासे मनुष्य आगे बढ़ता है। अत: कल्पनाको सिकोड़ मत डालो।'

'आत्माका अपमान मत कर लो। साधकके पास विशाल कल्पना होगी, आत्मविश्वास होगा, तो ही वह टिक सकेगा। इसीसे उद्धार होगा। यदि उच्च आकांक्षा नहीं रखोगे, तो एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकोगे।'

× × ×

अपवित्र विचारोंसे मुक्त होना कठिन अवश्य है, असम्भव नहीं है। प्रयत्न किया जाय, उसके लिये जी-जानसे चेष्टा की जाय तो मुश्किल क्या है?

असली मुश्किल तो यह है कि हम शुरूमें ही कन्धा डाल देते हैं। हम पहलेसे ही मान बैठते हैं कि अपवित्र विचारोंसे मुक्त हुआ ही नहीं जा सकता। फिर यदि अपवित्र विचार हमपर हावी रहते हैं, हमें घेरे रहते हैं, हमें पतनकी ओर घसीटते रहते हैं, तो इसमें अस्वाभाविक क्या है?

× × ×

रमण महर्षि तथा इसी कोटिके महापुरुषोंके निकट जानेवालोंका अनुभव है कि वहाँ जाते ही समस्त विकार शान्त हो जाते हैं, सभी समस्याएँ स्वत: सुलझती प्रतीत होती हैं और हृदयमें शान्ति, सुख और आनन्दकी पावन त्रिवेणी प्रवाहित होती जान पड़ती है।

× × ×

आखिर ये भी तो हमारी-आपकी ही तरह हाड़-मांसके पुतले हैं।

जो बात इनके लिये सम्भव हो सकी, वह हमारे-आपके लिये क्यों सम्भव नहीं है?

× × ×

निश्चय ही हम-आप भी अपवित्र विचारोंसे मुक्त हो सकते हैं, केवल निश्चय चाहिये।

'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु।'

साधकोंके प्रति—

संयोगमें वियोगका दर्शन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

संसारमें संयोग और वियोग—दो चीजें हैं। जैसे आप और हम मिले तो यह संयोग हुआ तथा आप और हम अलग हुए तो यह वियोग हुआ। तो ये जो संयोग और वियोग हैं, इन दोनोंमें वियोग प्रबल है। तात्पर्य यह कि संयोग होगा कि नहीं होगा—इसका तो पता नहीं, पर वियोग जरूर होगा—यह पक्की बात है। जिसका वियोग हो जाय, उसका फिर संयोग होगा—यह निश्चित नहीं, पर जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग होगा—यह निश्चित है। इससे यह सिद्ध होता है कि जितने भी संयोग हैं, सब वियोगमें जा रहे हैं। प्रत्येक संयोगका वियोग हो रहा है। यह सबके अनुभवकी बात है। अब इसमें बुद्धिमानीकी बात यह है कि जिसका वियोग अवश्यम्भावी है, उसके वियोगको हम अभी, वर्तमानमें ही मान लें। फिर मुक्ति, तत्त्वज्ञान, बोध अपने-आप हो जायगा। कितनी सरल बात है! शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण, 'मैं' पन—सबका एक दिन वियोग हो जायगा। आप इनके वियोगका अनुभव वर्तमानमें ही कर लें। प्रत्येक संयोग वियोगमें बदल जाता है, इसलिये वास्तवमें वियोग ही है, संयोग है ही नहीं। संयोगरूपी लकड़ी निरन्तर वियोगरूपी आगमें जल रही है।

जीवका वास्तविक सम्बन्ध परमात्माके साथ है; जिसे 'योग' कहते हैं। इसका कभी वियोग नहीं होता। वस्तुतः परमात्मासे जीवका वियोग कभी हुआ ही नहीं। जीव केवल परमात्मासे विमुख हो जाता है। मनुष्यका संसारसे संयोग होता है, योग नहीं होता। संयोगका तो वियोग हो जाता है, पर योग सदा रहता है। जैसे यहाँ हम दो महीनेके लिये आये हैं। अब पन्द्रह-बीस दिन गुजर गये, तो क्या अब भी दो महीने हैं? ये पन्द्रह-बीस दिन वियुक्त हो गये, हम इनसे अलग हो गये और अलग हो ही रहे हैं। एक दिन पूरा वियोग हो जायगा। ऐसे मात्र पदार्थ, परिस्थिति, अवस्था आदिका हमसे वियोग हो रहा है। कोई नया संयोग होगा तो वह भी वियोगमें जायगा। इसमें क्या सन्देह है, बताओ? तो इस वियोगको ही हम महत्त्व दें, इसे ही सच्चा मानें। फिर परमात्मामें स्वतः हमारी स्थिति हो जायगी। कारण कि सचाईसे ही सचाईमें स्थिति होती है। परमात्मामें स्थितिका ही नाम है—मुक्ति।

जो अवश्यम्भावी है अर्थात् जिसका होना निश्चित है, उस वियोगको पहले ही स्वीकार कर लें, तो फिर अन्तमें रोना नहीं पड़ेगा—

मन पछितैहै अवसर बीते।
अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥

(विनय-पत्रिका १९८)

वर्तमानमें ही वियोगको स्वीकार कर लेना 'योग' है—'**तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।**' (गीता ६।२३) 'दुःखरूप संसारके संयोगके वियोगका नाम योग है।' संयोगमें विषमता रहती है। संयोगके बिना विषमता नहीं होती। संयोगका त्याग करनेसे विषमता मिट जाती है और योग प्राप्त हो जाता है—'**समत्वं योग उच्यते**' (गीता २।४८)। फिर न कोई दुःख रहता है, न सन्ताप रहता है, न जलन या हलचल ही रहती है।

जबतक संयोग है, तबतक प्रेमसे रहो, दूसरोंकी सेवा करो—'***सबसे हिलमिल चालिये, नदी नाव संजोग॥***' जितनी बन सके, सेवा कर दो। बदलेमें किसी वस्तुकी आशा मत रखो। जिनसे वियोग ही होगा, उसकी आशा रखे ही क्यों? माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदि जितने भी हैं, उन सबसे एक दिन वियोग होगा। उनसे अच्छे-से-अच्छा व्यवहार कर दें। मनकी यह गलत भावना निकाल दें कि वे बने रहेंगे। जो मिला हुआ है, वह सब जा रहा है, फिर और मिलनेकी आशा क्यों रखें? और मिलेगा कि नहीं मिलेगा—इसका पूरा पता नहीं, पर मिल जाय तो रहेगा नहीं—इसका पूरा पता है। फिर उसके मिलनेकी इच्छा करके व्यर्थ अपनी बेइज्जती क्यों करें?

राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि भी रहते नहीं, अपितु जा ही रहे हैं। ये सब विनाशी हैं और जीव अविनाशी है—'***ईस्वर अंस जीव अबिनासी।***' विनाशीका संग छोड़ना मुक्ति है और अविनाशीमें स्थित होना भक्ति है। विनाशीका वियोग हो ही रहा है। इस वियोगको अभी ही स्वीकार कर लें। फिर मुक्ति और भक्ति—दोनों स्वतःसिद्ध हैं।

नन्द-देहरीमें अटका ब्रह्म—एक अद्भुत लीला

एक दिन रुद्रांश ऋषि दुर्वासा गोकुलमें पधारे। ऋषि! आप? झुककर भगवती पौर्णमासीने प्रणाम किया।

आप यहाँ भगवती? परम शैव हैं आप…और शैवोंको तो शिवधाममें ही वास करना चाहिये…आप यहाँ कैसे?

दुर्वासा ऋषिने पौर्णमासीसे चकित हो, प्रश्न किया था…और भगवती! मुझे स्मरण होता है जब आप काशीमें समाधिस्थ होती थीं…निराकारके ध्यानमें आपका लीन हो जाना मुझे आनन्दित करता था…आपके भाई ऋषि सान्दीपनिसे मैं मिला था महाकालके मन्दिरमें…वे हैं अनन्य शैव…काशी छोड़कर गये भी तो शिवधाम अवन्तिकामें…पर आप यहाँ क्यों?

प्रणाम मामाजी! पीछेसे आकर मनसुखने प्रणाम किया ऋषिको। मनसुख मामा ही कहता है जो भी ऋषि इसे मिलें। और ये तो तुम्हारा पुत्र है? दुर्वासाने जब मनसुखको देखा तो पूछा। जी, ऋषिवर! ये मेरा ही पुत्र है… पौर्णमासीने इतना ही कहा। इसे ब्रह्मनिष्ठ बनातीं, ब्रह्मवेत्ता बनाना था इसे। ब्रह्मकुलका ये बालक है… कहाँ ले आयी हो तुम इसे…और स्वयं भी!

दुर्वासाको अच्छा नहीं लग रहा है पौर्णमासी और मनसुखका गोकुलमें रहना…

आप 'गौरस' आदि कुछ तो स्वीकार करें मेरी कुटियामें चलकर? पौर्णमासीने आग्रह किया।

दुर्वासा भगवती पौर्णमासीकी बात मानकर उनकी कुटियामें चल तो दिये और कुछ गौदुग्धका पान भी किया, पर…। वत्स! ब्रह्मको जबतक नहीं जाना सब जानना व्यर्थ है…। मनसुखके सिरमें हाथ रखते हुए दुर्वासाने कहा।

भगवती पौर्णमासीके प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे ऋषि दुर्वासा… क्योंकि उस समय शायद ही कोई हो… जो पूर्ण शिवानुरागिनी हो, अगर कोई थीं तो पौर्णमासी ही थीं।

समाधि लग जाती इनकी तो वर्षों यूँ ही बीत जाते। इसलिये तो दुर्वासा आज पौर्णमासीके यहाँ पहुँच गये थे।

मनसुख! तुमने कालको जीत लिया है। सनकादिकोंकी तरह तुम भी हो। एक ही वय तुम्हारी है। तुम सिद्ध योगियोंमेंसे एक हो। फिर क्यों उस ब्रह्मानुभूतिको त्यागकर तुम यहाँ…?

मामाजी! ब्रह्म तो मेरा यहीं है। कल ही उसने चलना सीखा है। नहीं, नहीं… घुटवन चलना सीखा है। निराकार ही यहाँ नराकार हो गया है मामा जी! खूब किलकारियाँ मारता है। नन्हें-नन्हें पाँव पटकता है। जब इन आँखोंसे ही दिखायी पड़ रहा है तो कौन ध्यान करे और कौन आँखें बन्द करे?

हँसते हुए मनसुखने ये सारी बातें कह दी थीं। तो ब्रह्मको हमें नहीं दिखाओगे?

ऋषिने भी मनसुखसे कह दिया। क्यों नहीं मामाजी! सबको सुलभ है वो यहाँ? ज्ञानियोंके ब्रह्मकी दुर्लभता नहीं है उसकी यहाँ, न आँखें बन्द करनी है आपको न 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुसन्धान बस देखना है नन्दके उस आँगनमें। वहीं खेलता है आपका ब्रह्म।

पौर्णमासी हँस रही हैं। दुर्वासा ऋषिने उठते हुए कहा… अब तो चलो… नन्दके आँगनमें ही चलो…देखते हैं तुम्हारे ब्रह्मको। ऐसा कहकर दुर्वासा ऋषि चल पड़े। आगे-आगे मनसुख बड़े उत्साहसे चल रहा था।

लाला! लाला! उधरसे दाऊ आ गये थे…और कन्हैयाको पकड़कर कुछ कह रहे थे।

अभी बोलना नहीं आता कन्हैयाको ना, हाँ, हत् बस ऐसे ही कुछ शब्द हैं, जो कन्हाई बोल लेता है।

चलो! उधर! उँगलीके इशारेसे बताया दाऊने। दाऊ भी तो छोटे ही हैं… पर हाँ ये बोल लेते हैं। नन्द-महलके बाहर जानेके लिये दाऊ कह रहे हैं कन्हैयाको।

खुश हो गये कन्हैया…किलकारियाँ मारने लगे तो दाऊने हाथ पकड़ लिया कन्हैयाका…और लेकर चले… पर अपनेको न सँभाल पानेके कारण कन्हैया गिर गये। गिर गये तो रोने लगे। दाऊने चुप कराया फिर धीरेसे बोले—'लाला! चल! उधर कन्हैया लगी चोटको फिर भूल गये और घुटवन-घुटवन आगे बढ़ने लगे। चाल तेज है दोनोंकी आज दोनोंने ही ये संकल्प कर लिया है कि देहरी पार करनी ही है।

जैसे-तैसे घुटनोंको छिल-छिलाके पहुँच ही गये थे ये देहरीमें।

अब देहरीसे नीचे उतरना है। दाऊने देखा, पर चंचलताकी पराकाष्ठा कन्हैया! वो तो नीचे उतर भी गये। पर नीचे गहरा है बहुत, दो फुट भी तो इनके लिये गहरा ही है। देहरीको पकड़ लिया ऊपर है, अब हाथ छोड़ें तो गिर पड़ेंगे। गिर पड़ेंगे तो चोट लगेगी।

अब तो आ, ऊँ, जोरसे चिल्लाना शुरू किया कन्हैयाने। कन्हैयाके चिल्लानेसे डर गये दाऊ; क्योंकि यहाँ वही तो लाये थे कन्हैयाको। वे कहें चुप! मैं खींचता हूँ तुझे, पर तू चुप रह। समझ गये कन्हैया भी, वो चुप भी हो गये। दाऊने खींचना भी चाहा, पर फिर लटक गये कन्हैया देहरीमें।

वत्स! ब्रह्मको जानना ही ब्राह्मणत्व है। दुर्वासा समझाते हुए चल रहे थे। हँसा मनसुख और हँसते हुए रुक गया। वो देखिये, आपका ब्रह्म नन्दकी पौरीमें अटका हुआ है। दुर्वासाने देखा वे स्तब्ध रह गये। उनके नेत्र खुले-के-खुले रह गये।

दिव्य नीलमणिके समान चमकता हुआ एक बालक है। सूर्य-चन्द्र जिसके प्रकाशके आगे कुछ नहीं हैं। उसका प्रकाश हजारों सूर्योंके समान है, पर शीतलता इतनी जितनी चन्द्रमामें भी नहीं है। लाल अधर, घुँघराले केश—ऐसा लग रहा है, जैसे मुखरूपी कमलमें सैकड़ों भौंरे घूम रहे हों। नन्हें-नन्हें हाथ, वक्षमें भृगु-चरण-चिह्न, छोटा-सा उदर, गम्भीर नाभि, छोटे-छोटे चरण जो लटके हैं।

चरणोंमें चिह्न हैं—चक्र, शंख, गदा, पद्म, यव, मछली, षट्कोण। आहा! दुर्वासा ऋषिकी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं। हाँ, यही तो है ब्रह्म, जो निराकार था, आज साकार होकर प्रकटा है। पर दुर्वासा उस समय चौंक गये। जब यह ब्रह्म रोने लगा और रोते हुए दाऊसे इशारेमें कहने लगा—'मुझे ऊपर खींच'।

दाऊ भी तो बालक ही हैं। पूरी ताकत लगाकर कन्हैयाको दाऊने खींचा। जैसे-तैसे खींच लिया ऊपर।

ऋषि दुर्वासाको अब देहभान नहीं है··· वो सब कुछ भूल चुके··· बस उनके हृदयमें यही 'बालकृष्ण' अच्छे-से बस गये हैं अब।

ऋषि आनन्दमें डूबकर यही गा रहे थे।

श्रुति जिसे पढ़नी हो, पढ़े, जिसे उपनिषद् पढ़ना हो वो भी पढ़े। जिसे निराकार ब्रह्मज्योतिमें अपना ध्यान लगाना हो लगाये। पर मैं तो इस 'नन्ददेहरी' को प्रणाम करता हूँ··· जिसमें ब्रह्म अटक गया था··· दुनियाको उबारनेवाला स्वयं उबरनेके लिये याचना कर रहा था आहा! ये कहते हुए ऋषि दुर्वासा आनन्दित हो नाचते रहे··· बृजरजको अपने शरीरमें लगाते रहे···

मनसुख ये देखकर बहुत प्रसन्न हुआ था।

बोध-कथा—

पंजाब-केसरीकी उदारता

पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। अकस्मात् एक ढेला आकर उनके लगा। महाराजको बड़ी तकलीफ हुई। साथी दौड़े और एक बुढ़ियाको लाकर उनके सामने उपस्थित किया।

बुढ़िया भयके मारे काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनोंसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलको देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे अभाग्यसे आप बीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ, सरकार! मैंने ढेला आपको नहीं मारा था। क्षमा कीजिये।'

बुढ़ियाकी बात सुनकर महाराज रणजीतसिंहजीने अपने आदमियोंसे कहा—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो!'

लोगोंने कहा—'सरकार! यह क्या करते हैं। इसने आपको ढेला मारा, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिये।'

रणजीतसिंह बोले—'भाई! जब बिना प्राणोंका तथा बिना बुद्धिका वृक्ष ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण तथा बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।'

'निन्दक नियरे राखिये'

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

प्रशंसा और निन्दा दो परस्पर विराधी तत्त्व हैं। मनके अनुकूल होनेके कारण जहाँ प्रशंसा हमें मिस्त्रीकी तरह मीठी लगती है, वहीं मनके प्रतिकूल होनेके कारण निन्दा हमें नीमकी निम्बोलीकी तरह कड़वी लगती है। अत: स्वाभाविक रूपसे प्रशंसा करनेवालेके प्रति हमारा राग हो जाता है और निन्दा करनेवालेके प्रति हमारा द्वेष हो जाता है। आत्मवेत्ताओंका कथन है कि आत्मोत्कर्षके लिये न तो राग अच्छा है और न द्वेष। इसलिये एक आत्मान्वेषीको दोनों ही स्थितियोंसे यथासम्भव बचना चाहिये। परंतु क्या एक सामान्य व्यक्तिके लिये ऐसा करना सम्भव है, इस आलेखमें हम इसी विषयपर किंचित् चर्चा करेंगे।

मनुष्यके जीवनमें कई बार ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो जाती हैं, जो असह्य होती हैं और मनको खिन्न एवं विषादग्रस्त कर देती हैं। इस प्रकारकी परिस्थितियोंमें एक है, किसीके द्वारा आलोचना अथवा निन्दा किया जाना। सामान्यत: मनुष्य अपने लिये प्रशंसाके शब्द ही सुनना चाहता है। यह मानवीय कमजोरी है, जिससे उबरना इतना आसान नहीं होता, जितना कि हम सोच लेते हैं। किसी व्यक्तिमें लाख दोष-दुर्गुण भरे हों, उसे अपनी कमियाँ दिखायी नहीं देतीं। यदि किसी व्यक्तिको अपने दोष दिखायी दे भी जायँ, तब भी वह अपने स्वभावकी बजाय परिस्थितियोंको ही जिम्मेदार ठहरानेकी कोशिश करता है; क्योंकि मनुष्य स्वभावत: अपनेको अच्छा और गुणी ही मानता है। प्रत्येक आदमीको अपनी कमीज दूसरेकी कमीजसे स्वच्छ ही दिखायी देती है।

प्राय: ऐसा होता है कि जब कोई दूसरा व्यक्ति हमारी कमियों या त्रुटियोंको इंगित करता है, तो हमें बहुत बुरा लगता है। हम इतने असहिष्णु और अनुदार होते हैं कि किसी औरके द्वारा इंगित की गयी त्रुटिको सहन नहीं कर पाते। दूसरे शब्दोंमें इसे हम अहंकार भी कह सकते हैं, जो दूसरेको दोषदर्शनका अधिकार देना नहीं चाहता। वस्तुत: अपनी निन्दा अथवा आलोचना न सह पाना एक मानवीय कमजोरी है। हम प्रशंसा तो सुनना पसन्द करते हैं, किंतु निन्दा अथवा आलोचनासे बचना चाहते हैं, चाहे वह कितनी भी सही क्यों न हो, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि निन्दा-आलोचना प्रशंसाका दूसरा पक्ष है। दोनों एक सिक्केके ही दो पहलू हैं। जो व्यक्ति जितना प्रशंसित और चर्चित होता है, उसकी उतनी ही निन्दा-आलोचना भी होती है। बुरे कर्मोंमें संलग्न लोगोंकी निन्दा अलग बात है, जबकि उनकी प्रशंसा करनेवाले लोग भी समाजमें मिल जायँगे।

प्राय: हम अपनी प्रशंसा करनेवालोंसे प्रसन्न हो जाते हैं और उन्हें अच्छा होनेका प्रमाणपत्र भी दे डालते हैं। यही नहीं, हम उन्हें अपना मित्र और हितैषी भी मानने लगते हैं। दूसरी ओर जो हमारी आलोचना या निन्दा करते हैं, हम उनसे नाराज हो जाते हैं और कभी-कभी तो उन्हें अपना शत्रु मानकर अनुचित व्यवहार करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्यको स्वभावसे ही चापलूसी पसन्द होती है और वह अपना प्रभाव दिखाने लगती है। झूठी प्रशंसासे भी हम प्रसन्न हो जाते हैं। वास्तविकता यह है कि अधिकांश मामलोंमें प्रशंसा सत्यपर आधारित नहीं होती है, लेकिन फिर भी वह हमें गुदगुदाती है, आह्लादित करती है।

सत्य तो यह है कि हमारी प्रशंसा यदि सत्य भी है, तब भी हमें उससे कोई लाभ होनेवाला नहीं और वह असत्य है तो हमारी हानि होना तय है। झूठी प्रशंसा हमें पतनके गर्तमें धकेलती है। झूठी प्रशंसासे हम अभिमानित हो जाते हैं, जिसका परिणाम केवल पतन ही हो सकता है, उत्थान नहीं। इसी प्रकार झूठी निन्दासे भी हमें कोई हानि नहीं होती, लेकिन यदि हमारी निन्दा सच्ची है, तथ्योंपर आधारित है तो उससे हमें लाभ ही होगा। इससे हमें अपनी भूलका पता चल जायगा और

हमारे लिये सुधारके द्वार खुल जायँगे। सन्त-शिरोमणि कबीर साहिबजीका तो यहाँतक कहना है कि निन्दकके लिये प्रेमपूर्वक अपने निवास-स्थानपर रहनेहेतु एक कुटी बना देनी चाहिये; क्योंकि वह बिना जल और साबुनके हमारे स्वभावको निर्मल कर देगा—

निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥

निन्दा-आलोचनाको यदि सहज भावसे लिया जाय तो व्यक्तिको अपने उत्कर्षमें इतनी सहायता मिलती है कि उसे सहज ही अपने सुधारका दिशाबोध होने लगता है। हमें अपने दोषों या कमियोंका उतना पता नहीं लगता, जितना कि दूसरोंको लगता है। स्वदोषदर्शनसे परदोषदर्शन कहीं अधिक आसान और रुचिकर होता है। अपने व्यवहार अथवा आचरणकी परख दूसरोंके द्वारा की गयी आलोचना और निन्दाके प्रकाशमें भलीभाँति की जा सकती है। कहते हैं कि सन्त पलटूको जब यह पता चला कि उसके निन्दककी मृत्यु हो गयी है, तो वे बिलख-बिलखकर रोने लगे। रोनेका कारण पूछनेपर उन्होंने कहा कि ऐसा सेवक कहाँ मिलेगा, जो बिना पारिश्रमिक लिये अपनी जिह्वासे मेरी गंदगी साफ करता हो।

ब्रह्मानन्द सरस्वतीजीका कथन है—'यदि कोई तुम्हारी निन्दा करे, तो तुम्हें भीतर-ही-भीतर प्रसन्न होना चाहिये; क्योंकि निन्दा करके वह तुम्हारा पाप अपने सिरपर ले रहा है।'

महापुरुषोंका कथन है कि अपनी निन्दा-आलोचना अथवा स्वदोषदर्शनमें रुचि होना इस बातका प्रमाण है कि हमने अपने घरकी देखभाल करनी आरम्भ कर दी है। यदि कोई व्यक्ति अपनी निन्दाको सकारात्मक भावसे स्वीकार करने लगे तो इसमें हित और उत्कर्ष साधन ही होता है। कई बार यह निन्दा अपने प्रकट-अप्रकट दोषोंकी ओर इंगित करती है तथा उन्हें सुधारनेकी प्रेरणा देती है, तो कई बार जब अतिरंजित ढंगसे निन्दा-आलोचना की जाती है, तो वह उन दोषोंकी ओरसे हमें सतर्क करती है। महाभारतके युद्धके समय जब अर्जुन मोहग्रस्त होकर पलायनकी बातें करने लगा था, तब भगवान् श्रीकृष्णने उसकी आलोचना करते हुए कर्मयोगके प्रति उसकी जिज्ञासाको जाग्रत् किया था। अर्जुनकी भर्त्सना करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

(२। २-३)

अर्थात् हे अर्जुन! तुम्हें इस विषम स्थलमें यह अज्ञान किस कारण उत्पन्न हुआ? क्योंकि यह न तो श्रेष्ठजनोंद्वारा आचरण किया गया है तथा न स्वर्ग और कीर्ति ही देनेवाला है। इसलिये हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुम्हारे लिये यह उचित नहीं। तुम्हारे हृदयमें जो तुच्छ दुर्बलता उत्पन्न हो गयी है, उसे त्यागकर तुम युद्धके लिये खड़े हो जाओ। भगवान्‌द्वारा की गयी इस भर्त्सनाका प्रभाव यह हुआ कि अर्जुनकी सोयी हुई चेतना जाग्रत् हो गयी और उसने युद्धमें इतना साहस एवं पराक्रम दिखाया कि अविजित दिखायी देनेवाले शत्रु धराशायी हो गये।

आज विश्वमें लोकतांत्रिक प्रणालीको अन्य शासन-प्रणालियोंसे इसलिये श्रेष्ठ और सफल बताया जाता है, क्योंकि इसमें सत्तारूढ़ पक्षके अतिरिक्त एक सबल विपक्ष भी होता है, जो सरकारकी त्रुटियों और गलतियोंपर अपनी पैनी-नजर बनाये रखता है। इसी कारण शासक अपनी मनमानी नहीं कर पाता और आलोचनाके भयसे वह संविधानके अनुसार कार्य करनेको बाध्य होता है। परंतु आलोचना केवल आलोचनातक सीमित नहीं होनी चाहिये, अन्यथा वह अच्छे कार्योंमें भी अवरोधक बनकर खड़ी हो जायगी।

ज्ञानीजनोंका मत है कि निन्दा-आलोचनासे रुष्ट होने, दुखी होने अथवा प्रतिकारकी भावना रखनेकी

अपेक्षा उसका रचनात्मक उपयोग करनेकी ही बातपर विचार करना चाहिये। यदि निन्दा अथवा आलोचनाको सहज भावसे स्वीकार कर लिया जाय तो उससे दोषों एवं दुर्गुणोंका विनाश होता है। हितोपदेशकी प्रसिद्ध उक्ति है—'**ज्योतिषा बाधते तमः निन्दया बाधते दोषः।**' अर्थात् प्रकाशसे अन्धकारका नाश होता है और निन्दासे दोषोंका विनाश होता है। दोषोंके विनाश होनेसे आत्मोत्कर्ष और आत्मपरिष्कारका मार्ग प्रशस्त होता है। प्रचलित कहावत है कि दृष्टि ऐसी हो, जो निन्दाके प्रकाशमें अपने दुर्गुण-दोषोंको देख सके और सहिष्णुता ऐसी होनी चाहिये, जो अपनी निन्दा एवं आलोचनाको बिना किसी प्रतिकारके सहन कर सके।

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

श्रीधर स्वामी संस्कृतके प्रकाण्ड पंडित तो थे ही, उनकी आध्यात्मिक अभिरुचि और परम सत्यकी खोज भी अत्यन्त तीव्र थी। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतपर जो टीकाएँ लिखी हैं, वे विद्वज्जनोंमें अत्यन्त सम्मानसे देखी जाती हैं।

अपने गृहस्थ-जीवनमें वे दक्षिण भारतके एक राजदरबारमें सम्मानित थे। यद्यपि उनके मनमें परम सत्यको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा और संसारका नश्वर स्वरूप तीव्रतासे उभरता रहता था, किंतु वैवाहिक जीवनका कर्तव्यबोध उन्हें बाँधे रखता था। उन्हें लगता था कि उनके गृहत्यागसे उनकी पत्नी और अल्पायु पुत्र असहाय हो जायँगे। इसी बीच उनकी पत्नीका अकस्मात् देहावसान हो गया। अतः पुत्र-पालनकी चिन्ता उन्हें अधिक विचलित करने लगी।

एक दिन अकस्मात् उन्होंने देखा कि कमरेकी छतसे छिपकलीका एक अण्डा नीचे गिरकर टूटा और उसमेंसे एक छोटा छिपकलीका बच्चा निकला। वह अपना मुँह बार-बार खोल रहा था, जैसे उसे भूख लगी हो। श्रीधर पंडितको लगा कि यह जीव कुछ देरमें मर जायगा; क्योंकि उसका आहार कहाँसे मिलेगा! तभी एक मक्खी कहींसे उड़ती हुई उस अण्डेके टूटे हुए छिलकोंके पास आयी और उनपर चिपक गयी। उस छिपकलीके शिशुने अपनी जीभ लहराकर उसे निगल लिया।

श्रीधर पंडितको अचानक अपने विचलित जीवनका समाधान मिल गया। उन्हें स्पष्ट दीखा कि परमात्मा ही इस सम्पूर्ण अस्तित्वका नियन्त्रण करते हैं और उनकी अपने पुत्र-पोषणकी चिन्ता व्यर्थ है। पंडितजी संन्यस्त होकर श्रीधर स्वामी बन गये और उनके अल्पायु पुत्रको एक धनाढ्य व्यक्ति ले गये और उसका उचित लालन-पालन किया।

श्रीमद्भगवद्गीताके नवें अध्यायके श्लोक—

'.....**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति**'-की व्याख्यामें श्रीधर स्वामीने इस बातपर जोर दिया है कि हर परिस्थितिमें प्राणी-पदार्थोंके साथ भगवत्कृपाकी धारा बनी रहती है और आवश्यकतानुसार परिस्थितियोंका निर्माण करती है।

गीताके इस श्लोकमें '**कौन्तेय प्रतिजानीहि**' (हे अर्जुन, तू प्रतिज्ञापूर्वक घोषित कर दे कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता)-पर विचार उठता है कि भगवान् कृष्ण स्वयं भक्त-संरक्षणकी घोषणा क्यों नहीं करते? अर्जुनसे ऐसा करनेको क्यों कहते हैं? भगवत्प्रेमी सन्तोंका मत है कि भगवान् स्वयं तो अपनी प्रतिज्ञा कभी-कभी तोड़ भी देते हैं, किंतु भक्तकी प्रतिज्ञापर आँच नहीं आने देते। महाभारत-युद्धमें भीष्म पितामहकी प्रतिज्ञा बचानेको उन्होंने शस्त्र ग्रहण न करनेकी अपनी प्रतिज्ञा तोड़ डाली थी। अतः भक्तवत्सलताकी अनुपम धारा प्रवाहित करते हुए वे अर्जुनको अपनी ओरसे प्रतिज्ञाकी घोषणा करनेकी बात कहते हैं। प्रभुकी यही भक्तवत्सलता सन्तोंका जीवन-आधार है।

[अद्वैत आश्रमसे प्रकाशित Enlightening stories पर आधारित]

मान और अभिमान

(श्रीगणेशलालजी, कर्णप्रवासी)

मान और अभिमानका एक पहलू सामाजिक होता है और दूसरा आध्यात्मिक। सामाजिक आदर्श हो या आध्यात्मिक, उसके उदाहरणके लिये अशिक्षितोंको सामने नहीं रखा जा सकता। सभ्य, शिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्तियोंके वाणी-विचार, व्यवहार और कार्यको सामने रखकर ही किसी आदर्श या उदाहरणको हम तौल या परख सकते हैं।

हमें चाहे सामाजिक मान-प्रतिष्ठा कितनी भी प्राप्त हो, किंतु मानवजीवनके लिये उसका विशेष महत्त्व नहीं माना जाता है। देखनेमें यह आता है कि जब मनुष्य सामाजिक दायरेसे बाहर निकलकर जीवन-चेतना प्राप्त करते हैं कि यह जीवन वह नहीं है, जो हम समझ रहे हैं, तब उसे ऐसी प्रेरणा प्राप्त होनेपर उनकी सामाजिक भूमिका समाप्त हो जाती है। वे किसी अज्ञात लक्ष्यकी ओर बढ़ने लगते हैं। उनका जीवन-स्तर ही बदल जाता है।

भारतीय वेदों-उपनिषदोंका यही दिशासंकेत रहा है कि जबतक मानवकी आध्यात्मिक चेतना जाग्रत् नहीं होती, तबतक उसका जीवन सफल नहीं माना जा सकता है। यह सफलता क्या है ? हममेंसे कितने लोग इसे समझ सकते हैं ?

यह कथमपि अत्युक्ति नहीं कि जबतक हम सामाजिक दायरेमें रहते हैं, हमारे जीवनकी सामाजिक भूमिका बनी रहती है, हम मानव-जीवनको सही मान नहीं दे सकते हैं। मानका तात्पर्य-मूल्यांकन होता है। इसका अर्थ यह नहीं समझा जाय कि हम केवल पैसोंसे ही मूल्यांकन कर सकते हैं ? मूल्यांकनके और भी प्रकार होते हैं।

हम किसी चीजका सही मूल्यांकन करनेमें समर्थ कब हो सकते हैं, जब हम उस चीजको जान-समझ सकें, उसकी उपयोगिताओंको जान सकें, उस चीजकी खूबी-खासियतको भी समझ सकें।

सामाजिक जीवनके दायरेमें भौतिक भावनाओंके बीच रहकर हम अपने मानव-जीवनका अभिमान जरूर कर सकते हैं, परंतु उसका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते, जिसे मान कहा जाता है। यह तथ्य सरल होते हुए भी ज्ञानगम्य है। शिक्षा और सम्पत्तिके अभिमानमें रहकर हम इस सुगम तथ्यको समझ भी नहीं सकेंगे तो उसका मान भला कैसे कर पायेंगे ?

शरीराभिमानको साथ लेकर हम आध्यात्मिक भूमिकामें प्रवेश नहीं कर सकते हैं, संत-सत्पुरुषोंका ऐसा ही कथन है। प्रकृतिप्रदत्त क्षमता हर किसीको प्राप्त है, किंतु जो उसका उपयोग और सदुपयोग करते हैं, वे ही लाभान्वित होते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है। फिर भी क्या हम इस कथनको माननेके लिये तैयार हैं ?

समाजमें प्रभु-शक्तिकी प्रधानता है। एक मनुष्य दूसरेको अपने प्रभावमें रखकर अधिक-से-अधिक स्वार्थसाधना करनेको अपना मान समझते हैं—जब कि वह मान नहीं स्वच्छ अभिमान है।

हम दूध-जैसे सफेद वस्त्र पहनते हैं, चौमंजिली अट्टालिकाओंमें रहते हैं, तो इसका अर्थ यह थोड़े हो सकता है कि हम बहुत सभ्य और शिक्षित हैं ! सभ्यता और शिक्षाका प्रतीक तो हमारा वाणी-विचार, कार्य-व्यवहार, हमारी भावना-चेतना है।

अभिमानको छोड़े बिना आजतक कोई भी मानतक नहीं पहुँच सके हैं। उसके लिये उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं है। मान और अभिमानके बीचमें एक शब्द स्वाभिमानका आता है। उसे भी समझ लेना आवश्यक है कि यह स्वाभिमान क्या है, इसका क्या अर्थ होता है ?

हम जो कुछ हैं, उतना ही मानें, उससे अधिक मनवानेकी कोशिश न करें, तो यह हमारा स्वाभिमान होगा।

किसीने ऐसा कहा है—मानतक पहुँचनेके लिये हम अभिमानको अपना साथी न बनायें। अगर ऐसा किया तो उसका परिणाम वैसा ही हो सकता है, जैसा कि अभिमानको जीवनकी सफलता मानकर होता है।

शाश्वतकी अवहेलना करके अशाश्वतकी आराधना करना कहाँतक सही है ? इसे समझनेमें क्या हम अपने ज्ञानका, विवेकका सदुपयोग नहीं करते हैं ? आत्माके सामने शरीरका क्या अस्तित्व है ?

वैसे यह सत्य है कि कर्मयोगके लिये शरीरकी महत्ता जरूर मानी जानी चाहिये। किंतु जीवनका लक्ष्य कर्मफलका त्याग या भगवत्प्राप्ति माना गया है। ऋषि-महर्षियोंके जीवनसे, वेदोपनिषदोंके अध्ययनसे, यह निर्विवाद सिद्ध है कि हम अभिमानका त्याग कर ही अपने मानव-जीवनका सही मान प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य-जन्मकी सार्थकता

(श्रीसलिलजी पाण्डेय)

ईश्वरकी संरचनामें सर्वाधिक श्रेष्ठ स्थिति मनुष्यकी है। मानव-शरीर पानेके लिये देवता भी तरसते हैं। देखा जाय तो सबसे उच्च पायदानपर मानव है। जानवर उससे नीचे हैं। लेकिन जो जितनी ऊँचाईपर रहता है, वह जब गिरता है तो किस निम्न स्तरपर गिरेगा, कहा नहीं जा सकता। सबसे उच्च शिखरपर बैठा मनुष्य कभी-कभी जानवरसे भी नीचे चला जाता है। किसी मनुष्यपर रोष उतारनेके लिये प्राय: जानवरोंसे तुलना कर दी जाती है, लेकिन जानवर भी अपने पेट-पालनके लिये जो कुछ करता है, सिर्फ वही करता है। जंगलका सबसे खूंखार जानवरोंका राजा शेर होता है, लेकिन उसका भी अपना सिद्धान्त है। एक तो वह अपने आहारके लिये शिकार खुद करता है और जूठे, बासी मांसका भक्षण नहीं करता। इसके अलावा जब उसका पेट भर जाता है तो बचे हुए हिस्सेको बाँधकर संग्रह नहीं करता। उसे छोड़कर चल देता है। तब बचे हुए हिस्सेका भक्षण दूसरे असहाय जानवर करते हैं। पर्यावरणविद् शेरको जंगलका रक्षक बताते हैं। जानवरोंमें गाय तो माताके समान है। कुत्ते तो इतने कामलायक हैं कि जब कहीं कोई गम्भीर घटना हो जाती है तो प्रशिक्षित कुत्ते आगे-आगे चलते हैं, और पुलिस अधिकारी उनके पीछे-पीछे चलता है। यहाँ एक गायकी चोरीकी घटना समीचीन है। एक गरीब किसानकी गाय जो वह चरनेके लिये छोड़ देता था, उसे एक दबंग व्यक्तिने अपने घरमें बाँध लिया। चार-छ: माहकी खोजबीनमें किसानको अपनी गायका पता चला। वह दबंग व्यक्तिसे गाय वापस माँगने गया तो उसने किसानको मारपीट दिया। मामला पुलिसतक पहुँचा। दोनों पक्ष अपनी गायका दावा कर रहे थे। पुलिस अधिकारीने विवेकका परिचय दिया। उसने कहा कि गायको कुछ किलोमीटर दूर छोड़ दिया जाय, जिसके घर चली जाय, उसकी गाय। पुलिस अधिकारीकी बातका पूरे इलाकेने समर्थन किया। गाय छोड़ी गयी, वह छूटते ही दौड़ते हुए किसानके घर चली गयी। पूरे इलाकेमें एकसे बढ़कर एक ज्ञानी लोग जिस बातका निर्णय नहीं कर पा रहे थे, वह निर्णय गायने स्वयं कर दिया।

गाँवसे लेकर महानगरोंतक धोखाधड़ी, तिकड़म, नारी-अस्मिताका चीरहरण जिस घटिया स्तरतक हो रहा है, वह जानवरोंसे भी निचले स्तरका है। बड़े घनिष्ठसे दीखनेवाले दोस्त ही नहीं, खुद घरके खूनके रिश्तेसे बँधे लोग क्या नहीं कर रहे हैं। सक्षम होते ही माता-पिताको वृद्धाश्रमका रास्ता दिखाना क्या यह अच्छा संस्कार है। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, बड़े-बड़े पदोंपर बैठे लोगोंकी करनीका खुलासा होता है तो लोग दाँतोंतले अँगुली दबा लेते हैं। सार्वजनिक जीवनमें आदर्श, सत्य, संस्कार, धर्मका प्रवचन देनेवालोंतककी करनी आये दिन लोगोंके सामने आती है। ऐसी स्थितिमें क्या यह कहना उचित है कि यह मानव-शरीर श्रेष्ठ योनि है, जिसे पानेके लिये देवता तरसते हैं। यही सब कारण था कि राजकुमार सिद्धार्थको मानव-जीवनसे वितृष्णा हो गयी। गोस्वामी तुलसीदासजीकी आत्माने उन्हें झकझोर दिया। वाल्मीकि भी पहले लूट-पाट, छीना-झपटी करनेवाले डाकू थे। नफरत हुई तो वे सन्त हो गये। इन श्रेष्ठजनोंके जीवनसे यह सीख मिलती है कि जब मनुष्य घटिया स्तरकी सोच छोड़ देगा, उसी समय उसका मनुष्यके रूपमें जन्म सार्थक होगा, यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका अगला जन्म क्या होगा, यह तो फिलहाल स्पष्ट नहीं है, लेकिन कुसंस्कार उसके परिवारमें घुस गया तो उसकी अगली पीढ़ी गलत रास्तेपर प्राय: चली जाती है; क्योंकि घरके बच्चे बड़ोंकी नकल करते हैं।

विरह-सागरका चतुर नाविक

(पं० श्रीगोविन्दप्रसादजी मिश्र)

भगवान् श्रीरामचन्द्रके वियोगकी असह्य व्यथा सह सकनेमें असमर्थ महाराज दशरथकी सारी इन्द्रियोंमें जब शिथिलता आ गयी, तब महारानी कौसल्याजीने आर्त होकर हाथ जोड़ विनय करते हुए कहा—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥

परन्तु दशरथजी प्रेम-नैयाको कथित विरह-सागरमें आगे न खे सके और पतवार हाथोंसे छोड़ते हुए कहने लगे—

सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

और इस असफल कर्णधारने कूदकर प्राण दे दिये। बस, सारी अयोध्या अनाथ और असहाय हो गयी। चारों ओरसे शोक-सागर उमड़ पड़ा। इधर विरह-सागरमें नैया डाँवाडोल थी ही। उन्मत्त विरह-सागर अपनी उत्ताल तरंगोंकी चपेटसे अयोध्यावासियोंको त्रस्त कर ही रहा था। इनकी दशाका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं—

बिषम बियोगु न जाइ बखाना। ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥

आदि।

माताएँ रामजीकी विरह-वेदनाके साथ-साथ वैधव्य आदि शोकसे विकल हो रही थीं; सारे नर-नारियोंपर महान् विपत्ति टूट पड़ी थी, कोई किसीको ढाँढस न बँधाता था। अयोध्या शोक और विरह दो सागरोंकी भयानक तरंगोंमें कभी डूबती, कभी उतराती थी। उधर कैकेयी अपने स्वार्थकी मस्तीमें नैयाको पतवारसे सूनी या भँवरकी ओर घसीटे लिये जा रही थी। किसीको परिणामका ज्ञान न था। उसी समय कुशलकवि तुलसी एक चतुर, गम्भीर, नीतिज्ञ, शीलवान् नाविकको खोजकर ले आते हैं और उस डूबती नैयाकी पतवार उसके हाथोंमें सौंप भीषण भँवरसे बचा लेते हैं। वह चतुर नाविक कौन था? वे थे महामना महात्मा भरत! जिन्हें संसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाईके रूपमें पहचानता है।

भरतजी ननिहालसे लौटकर सीधे अपनी माता कैकेयीके महलमें पहुँचे। कैकेयीने सुना—पुत्र आ रहा है, जिसके लिये इतना सब कुछ मैंने किया है।

आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥

और आरती सजा दौड़कर द्वारपर ही जा पहुँची, माँको देखते ही भरतजी पूछते हैं—

कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥

'कपट नीर भरि नैन' माता कहने लगी—

तात बात मैं सकल सँवारी-------------।
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥

कैकेयीकी भावना थी कि भरत यह सुनकर सुखी होंगे, परंतु हुआ कुछ और ही—

तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥

नगरवासियोंने जिस परिणामका अनुमान किया था, ठीक ही निकला—

'राजु कि भूँजब भरत पुर'

मूर्छासे उठकर भरतजी कारण पूछते हैं—माता! पिताजी अचानक स्वर्गलोक कैसे सिधार गये? कारणका ज्ञान होनेपर ***'थकित रहे धरि मौनु'*** बस, भरतजी वहीं अपनी माताको विरहसागरसे उठाकर बाहर बिठा देते हैं और पतवार अपने हाथोंमें ले लेते हैं। भीषण रूप धारणकर उपयुक्त वचन कहते हैं—

हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥
··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· जनमत काहे न मारे मोही॥
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥
भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥
भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।

मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥

और अन्तमें उस माताको जो विरह-व्यथाके इतिहाससे अनभिज्ञ थी, तिरस्कृत करके कह ही डाला—

'आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥'

मैं तेरा मुँह भी नहीं देखना चाहता।

इसके बाद उन्हें अपने भविष्यके कर्तव्यका ज्ञान आया और सीधे माता कौसल्याके पास पहुँचे। यह आवश्यक था कि जिसका सबसे अधिक रूपमें बिगाड़ हुआ था, जो पति और पुत्रके वियोगमें डूब-सी रही थी, जिसके हृदयमें यह भावना हो सकती थी कि भरत ही मेरे इन दु:खोंका मूल है, और आशंका थी कि वह आर्त होकर प्राण न दे दें। वहाँ पहुँचकर भरतजी अपना निवेदन आरम्भ करते हैं—

कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भई काहे न बाँझा॥
कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥

आदि।

—कहकर अपना छलविहीन हृदय खोलकर माता कौसल्याके सामने रख दिया। भरत-जैसे सरल-शुद्ध हृदय और नीतिज्ञके लिये यह उचित ही था, नहीं तो अनर्थ हो जाता। कौसल्याजी कहीं हाथसे चली जातीं और यदि उन्हें इतना ही गुमान हो गया होता कि भरत इस मन्त्रणामें है, तो रामायण भी तुलसीकी दूसरी ओर चली जाती। इसीलिये भरतजी शपथ लेकर अपना बयान देते हैं—

छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥
जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥

जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥

आर्त होकर बहुत-कुछ कह डाला, कौसल्याजीका हृदय द्रवित होकर कह उठा—

मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए॥

यहाँ कौसल्याजीके हृदयकी उज्ज्वलताका प्रमाण मिल जाता है और भरत नि:शंक होकर आगे बढ़ते हैं। यदि तुलसीसे चतुर कविने अपनी माताकी अवहेलना करा रामकी मातासे यह न कहलवाया होता तो अयोध्याकी विरह-नैयाका नाविक-पद भरत न पाते और न जाने क्या अनर्थ हो गया होता!

क्रिया-कर्मसे निपट जानेके अनन्तर राजसभा हुई, वसिष्ठजी अयोध्याकी प्रजाके समक्ष भरतको राज्य-

भार सम्हालनेका अनुरोध करते हैं। धर्म, नीतियुक्त उपदेश देते हुए कहते हैं--(यह भरतकी परीक्षाका दूसरा समय था)

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥
अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥
नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥
परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥

भावार्थ यह कि अपनी माताकी अवज्ञा की सो तो ठीक, पिताकी आज्ञा तुम्हारे वंशमें सब मानते आये हैं, अतः तुम भी राज्यपद लेकर अनुचित-उचितका विचार छोड़ अपना कर्तव्य निभाओ।

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥

कौसल्याजीने भी कहा—

... ... । पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥

माता और गुरुकी इतनी प्रभावशाली वक्तृता उस चतुर नाविकपर क्या असर डालती है, यह देखते ही बनता है। वाह रे भरत! इस परीक्षामें भी तू सफलतासे उत्तीर्ण हो गया। पिताकी आज्ञा, माताका आग्रह, कौसल्याका अनुरोध, गुरुका उपदेश—इन सबको किस सुन्दरतासे अलग रख देता है। यदि यहाँ उलझ गया होता तो तुझे कौन पूछता। क्या ही सुन्दर शब्द हैं—

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

पिताका स्वर्गवास, सियारामका वन-गमन और मुझे राज्य करनेके लिये सबका आग्रह, आप मेरा इसमें हित समझते हैं, मेरा हित केवल सीतापतिकी सेवामें निहित है; परंतु उस निहितको माताकी कुटिलताने हर लिया। शोक-समाज लेकर मैं क्या राज्य कर सकूँगा? नहीं, बिना विरतिके ब्रह्म-विचार किस कामका? रुग्ण शरीरको बहु भोग सब व्यर्थ हैं। जैसे बिना जीवके शरीर, वैसा ही मेरा राज्य होगा। मेरी तो एक ही अभिलाषा, एक ही प्रार्थना और एक ही ध्येय है।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू॥

धन्य भरत! तुम्हारे बिना यह कौन कह सकता था। फिर कहते हैं—किसी योग्य व्यक्तिको राज्य दीजिये। मोहवश यदि मुझे राज्य आपने दिया, तो अयोध्याका राज्य रसातलको चला जायगा।

बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्राण सहि जग उपहासू॥
कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।

मेरा इससे अधिक क्या हित होगा। मेरा हित तो सब मेरी माताने ही बना दिया है। राम-सियको वनमें भेज दिया, पिताको विदाकर वैधव्य सुख ले लिया और प्रजा तथा माताओंको शोक-सन्ताप दे दिया।

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकईं सब कर काजू॥

मेरी सब बातें तो विधाताने ही बना दीं, आप वृथा ही प्रयास करते हैं।

कैकइ सुअन जोगु जग जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू।

मेरे दुर्दिन हैं, आपका दोष नहीं है। आप सब संशय—प्रेमवश जो उचित है, वही कह रहे हैं। सिवा सियारामके मुझे इस दुर्दैवसे निकालनेवाला कौन है? वे ही यह कह सकते हैं कि ***'मोर मत नाहीं'*** मुझे जगके उपहासका डर नहीं, परलोकका भी सोच मुझे नहीं, परन्तु दुःख इतना ही है—मेरे लिये मेरे जीवनके सर्वस्व रामने संकट सहे। मेरा अन्तमें यही कहना है—

बिना रामके चरण देखे मेरे हृदयकी जलन न जायगी।

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

फिर कहते हैं—

एकहिं आँक इहहिं मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

बस, यहींपर माताएँ, पुरजन, सभी लोग भरतको पतवार सौंप देते हैं और उन्हें विरहसागरका चतुर नाविक मान लेते हैं!

लोग बियोग बिषम बिष दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥

सब एक स्वरसे कहते हैं—

अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम अवलंबनु दीन्ह॥

और यहीं कौसल्या महारानीके वचन हैं।

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥

यह वचन दशरथ-मरणके समयके—***'करनधार तुम्ह अवध जहाजू'*** के साथ भरतपर घट जाता है और भरतजी प्रातःकाल ही इस जहाजमें प्रिय पथिकोंको बिठाकर चित्रकूटको चल देते हैं। क्या ही अनोखा दृश्य है?

चित्रकूटकी राहमें नाविक (निषाद) बिना पहचाने विरोधके साथ जहाजको रोकनेकी भूल करना चाहते हैं, पर कपटहीन नाविक अपनी क्षमतासे झूमता चला जाता है। फिर आगे चलकर लक्ष्मणजीको भ्रम होता है; परन्तु वहाँ भी इन्हींकी विजय होती है। परन्तु जगत् परीक्षा-पर-परीक्षा प्रतिक्षण करता रहता है। तीसरी बार भरत नाविककी परीक्षा चित्रकूटमें रामजीके समक्ष देते हैं। यहाँ भी तुलसी कहते हैं—

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी भरत-विरह-सागरका मन्थन करनेपर प्रेम-अमृत ही पाते हैं और जगत्-हितके लिये उसे अयोध्यावासियोंको सौंप देते हैं। परीक्षाके अन्तमें उन्हें चरण-पादुकाओंका प्रमाणपत्र दिया जाता है, जिसे लेकर भरत 'मगन मन' इतना बड़ा भार हँसते-हँसते अपने ऊपर लेकर अयोध्या लौट आते हैं।

भरतजी-सा चतुर नाविक विरह-सागरमें अयोध्याके इस जहाजको झूमते हुए खेता चला जाता है। दो-चार दिन नहीं, बड़े लंबे चौदह बरस। किसीको खटक न पाये, ऐसा मस्त योग्य नाविक और कौन मिल सकता था, धन्य भरत! राज्यमदको एक कोनेमें ढरका दिया। कई भँवर आये, कुशलतासे उनसे बचाकर नैया पार ले गया। खे गया! खूब ही खे गया!! सौंपी कहाँ! किसे! चौदह बरस बाद—

'रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।'
राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य सेवक—जिन्होंने भरतको इस विरहसागरकी नैया कुशलतासे खेते हुए, अयोध्यामें संजीवनी लाते समय देखकर कहा था—

'तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।'
भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥

वे परिचितपोत पवनकुमार भरतकी दशासे प्रभावित होकर कहते हैं—

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥

बस, भरत यहींपर संयोगके गम्भीर समुद्रमें इस जहाजको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको सौंपकर फिर विरहसागरमें किस सुन्दरतासे मग्न हो गये; संसार उसीकी यादकर करुण-रसकी उपासना करता है।

भरतजी नगरवासियों, माताओं और गुरुको साथ ले भगवान्के स्वागतको चल देते हैं। अहा! क्या सुख है! विरह-सागरका नाविक भवसागरके नाविकको अपना भार सौंपता है—

राजीव लोचन स्त्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

भरत! तुम्हें संसार पूजेगा! परंतु मूर्ति बनाकर नहीं, विरहसागरका चतुर नाविक समझकर!

जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

अगर भरत! तुम न हुए होते तो इन चौदह वर्षोंमें अयोध्या उजाड़ हो जाती। खाली विरह-सागर ही बहता होता! वाह रे चतुर नाविक धन्य!

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ सत्य, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदि गुण नित्य अखण्ड अनन्त रूपसे भगवान्‌में रहते हैं। भक्त जब भगवान्‌को अपने हृदयमें लाता है तो वे सत्य आदि गुण भक्तमें भी आ जाते हैं। पूर्णरूपसे प्रभु हृदयमें आवेंगे तो वे गुण भी पूर्णरूपसे आयेंगे। जैसे-जैसे प्रभुका ध्यान दृढ़ होगा वैसे सद्‌गुण आकर निवास करेंगे।

❀ भूमिके तीर्थ फलदायक तब होते हैं, जब मनके तीर्थोंमें स्नान किया जाय। उनका सेवन किया जाय। सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, अस्तेय आदि मानस तीर्थ हैं, इनके बिना भौम तीर्थ पूर्ण फल प्रदान नहीं करते हैं, अतः मानस तीर्थोंका सेवनकर मनको शुद्ध करना अति आवश्यक है। इनके साथ भौम तीर्थ विशेष फलदायक हैं।

❀ भागवतमें सबसे श्रेष्ठ भक्त व्रजकी गोपियोंको कहा गया है। वे घर छोड़कर कभी तपस्या करने नहीं गयीं। अपने घरपर गाय दुहते समय, दही मथते समय, झाड़ू लगाते समय, चौका लगाते समय, रोते हुए बालकोंको चुप कराते हुए भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन करती रहती थीं। घरका काम भी करना और भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन करते रहना—इसीसे भगवान् उनके ऊपर प्रसन्न हो गये। उन्हें अपना प्रेम प्रदान किया, उनके अधीन हो गये।

❀ एक बार श्रीनारदजीने भगवान्‌के समीप जाकर सत्संगकी महिमा पूछी। भगवान्‌ने कहा कि अमुक वनमें एक सरोवर है, उसके तटपर बैठा एक पक्षी भजन कर रहा है, तुम उससे जाकर पूछो। नारदजीने जाकर पूछा तो उसने उसी क्षण शरीर छोड़ दिया। इससे नारदजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने आकर समाचार बताया कि उस पक्षीने महिमा न बताकर शरीर ही छोड़ दिया। भगवान्‌ने कहा—'इस बार आप पृथ्वीलोकमें जाइयेगा तो अमुक ग्राममें अमुक ब्राह्मणकी गायके बछड़ेसे पूछियेगा, वह बतायेगा।' कुछ दिन बाद घूमते-फिरते नारदजीने उस बछड़ेसे जाकर पूछा तो वह भी और कुछ न कहकर शरीर छोड़कर चला गया। आश्चर्यचकित नारदजीने आकर भगवान्‌से कहा—'महाराज! आपकी आज्ञासे मैंने बछड़ेसे पूछा तो वह भी मर गया। अब आप ही सत्संगकी महिमा बताइये। इधर-उधर क्यों भटकाते हैं?' भगवान्‌ने कहा इस बार आपको अवश्य ही सत्संगकी महिमाका ज्ञान हो जायगा। अमुक नगरके राजकुमारसे जाकर पूछो। नारदजीने जाकर राजकुमारसे जैसे-ही प्रश्न किया तैसे-ही वह शरीर त्यागकर विष्णु-पार्षदरूप हो गया और नारदजीसे बोला कि मैं चौरासी लाख योनियोंमें भटककर पक्षी-योनिमें आया था, उस समय आपने मुझे दर्शन दिया। क्षणिक सत्संगसे मेरे पाप नष्ट हो गये और मैंने गो-योनि प्राप्त की। वहाँ भी आपने दर्शन दिया तो आपके संगसे पुनः पुण्योंकी प्राप्ति हुई और यह मनुष्य-शरीर मिला। इस बार भी प्रभुकृपासे आपका सत्संग मिला, इससे तो अब मैं पार्षदत्व प्राप्तकर वैकुण्ठको जा रहा हूँ, यह आपके संगका फल है।

श्रीनारदजीने समझा कि मैंने कुछ भी उपदेश नहीं दिया, केवल मेरी उपस्थितिमात्रसे इतना लाभ हुआ। अतः सत्संगकी महिमा अपार है।

❀ सभी अंगोंकी अपेक्षा चरण वन्दनीय होते हैं। चरणोंकी अपेक्षा पादत्राण विशेष वन्दनीय हैं, सभी अंग ऊपर है। सबसे नीचे चरण हैं। सम्पूर्ण अंगोंके सेवक एवं वाहक हैं। अतः श्रेष्ठ हैं। चरणोंसे पादत्राण श्रेष्ठ हैं; क्योंकि चरणोंके सेवक हैं। तात्पर्य यह है कि जो सबसे छोटा बनकर सेवा करता है, वह सबकी अपेक्षा वन्दनीय है। भक्तके अधीन भगवान् हैं, इसी सिद्धान्तसे पादत्राणके अधीन चरण हैं। चरण इधर-उधर घूमघामकर वहाँ ही आयेंगे, जहाँ पादत्राण है।

['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

आध्यात्मिक जीवन

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज)

मनुष्यको स्वयं अपने अन्दरमें समझना चाहिये कि हम सब भौतिक जीवन (बाहरके जीवन)-में बह रहे हैं और इस जीवनका अन्त केवल दु:खरूप ही है।

मनुष्यको चाहिये कि वह प्रयत्न करके अपने बिखरे हुए मनको बाहरसे एकत्रित करके अपने अन्दर लाये, जिससे कि उसकी प्राण-शक्ति भी देहके अन्दर आकर सुचारु रूपसे अंगोंको चलाये या पुष्ट करे, ताकि नाना प्रकारकी बीमारियाँ उसे परेशान न करें। इसलिये यही कहा गया है कि मनुष्य पच्चीस सालकी आयुसे लेकर चालीस सालकी आयुतक सँभलना शुरू कर दे। विचारद्वारा पहचानी हुई अपनी बुरी आदतोंको भी वह इसी कालमें छोड़नेका प्रयत्न करे। मनके जागनेपर अपना-आपा दिखने लगेगा। जब अन्दर ध्यान लगने लग गया तो अन्तमें संसारके प्राणी एवं पदार्थोंसे बेपरवाही हो जायगी और उनका अभाव महसूस नहीं होगा। अन्दर ध्यान लगनेसे यही समझा जायगा कि मन लगानेका आपको मार्ग (रास्ता) मिल गया है। मन अन्दर तबतक नहीं लगता, जबतक कि उसको ज्ञान नहीं मिलता है। सो यदि आपने सही मार्ग अपनानेकी हिम्मत करनी शुरू कर दी और शीघ्रातिशीघ्र धर्म-मार्गपर चलने लग गये, तो यह अति उत्तम होगा। वैसे तो मनुष्य आध्यात्मिक जीवनपर चलनेके लिये जिस समय भी चेत जाय, वही समय ठीक है, अर्थात् किसी भी समय इस मार्गपर चलनेसे उसका हित (कल्याण) ही होगा।

मनको बाहरसे इकट्ठा करनेका यही रास्ता है कि उसको बाहरके सुखकी ओर ले जानेवाले तृष्णारूपी कारणकी जड़ ही काट दी जाय। अपने मनको बोल-बोलकर समझाओ कि भौतिक संसारमें वास्तविक (असली) सुख कुछ भी नहीं है और जो भी तुच्छ (सारहीन) थोड़े सुख दिखायी भी देते हैं, वे अन्तमें दु:खोंमें ही समाप्त होते हैं। इस प्रकारका विचार करना ही ज्ञान उपजाना है। ये सब अन्दरके सत्य हैं और उनकी भक्ति करनी है। सत्यके ज्ञानको ही 'प्रज्ञा' कहा जाता है अर्थात् वह ज्ञान जो किसी विषयके बारेमें बार-बार विचार करनेसे अन्तिम फल (निचोड़)-के रूपमें मिलता है अर्थात् वह छिपा हुआ ज्ञान जो कि सांसारिक ज्ञानके मार्गसे नहीं प्राप्त होता, बल्कि ध्यानकी सूक्ष्मता (बारीकी)-से बुद्धिमें प्रकट होता है। इन प्रज्ञाओंकी ही उपासना करते-करते जैसे-जैसे आपका मन बाहरके संसारसे मुक्त होता जायगा, वैसे-वैसे ही आपको अन्दर आनन्द मिलता रहेगा। अन्तमें इस आनन्दका फल यही है कि बाहर किसीकी भी 'तू-मैं' नहीं जाननी पड़ेगी और यह भी समझमें आयेगा कि जैसे मेरी 'मैं' तुच्छ थी, वैसे ही सबकी मैं तुच्छ ही है। फिर एक चेतन ही है, जो सबकी देहोंमें बैठा हुआ सबका काम चला रहा है। यदि आपने उस चेतनको जान लिया और उसका आनन्द भी अखण्ड रूपसे (पूर्णरूपसे) आपको मिलने लग गया, तो यही आध्यात्मिक जीवनकी पूर्णता है। इस प्रकार यह जीवन चलते-चलते अन्तमें जहाँ पहुँचता है, उसी स्थानको परमधाम (परमपद) कहा जाता है। यह सुख कभी भी समाप्त होनेवाला नहीं है। यह जीवनका परमसुख कहलाता है। आप चुपचाप इस आध्यात्मिक जीवन-पथपर चलते रहो और किसीको खबर करनेकी भी आवश्यकता नहीं है कि मैं कैसे रहता हूँ? इस जीवनमें किसी भी प्रकारके बाहरी दिखावे (प्रदर्शन)-की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने जीवनको कुछ नियमोंमें रखकर चलना पड़ता है, जैसा कि शास्त्रोंमें सद्गुरुओंद्वारा चला हुआ जीवन बताया गया है।

[प्रेषक-श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग]

जीवन जीना और ढोना

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

मैंने कुछ लोगोंको देखा है, जो जीवन जीनेके लिये एवं कुछ करनेके लिये जीते हैं, लेकिन कुछ ऐसे लोगोंको भी देखा, जिनकी जीवन जीनेकी तमन्ना खतम हो गयी और वे हाथ उठाकर प्रभुसे प्रार्थना करते देखे गये कि प्रभु अब हमसे जीया नहीं जाता, हमें अब उठा लो और पास बुला लो।

अब इस सूत्रका विवेचन करनेमें जीवन जीनेवाले एवं जीवन ढोनेवाले चरित्रोंका हम वर्णन करेंगे।

मैं प्रातः-भ्रमण करनेका नित्यका अभ्यासी हूँ। चाहे अपने शहरमें रहूँ या अन्यत्र जाऊँ या परदेश जाऊँ, प्रातः-भ्रमणके नित्यके अभ्यासको नहीं छोड़ता। मैं बनारससे बम्बई जाता हूँ तो मरीन ड्राइवपर नित्य घूमता हूँ। वहाँपर हजारोंकी संख्यामें पुरुष एवं महिलाओंको नित्य घूमते आप भी देख सकते हैं। मैं जब घूम रहा था तो एक सज्जन हाफ पैंट एवं टी-शर्ट तथा कपड़ेका जूता पहने पाँच लोगोंसे खड़े होकर बातें कर रहे थे। उनके बात करनेके तरीकेसे प्रभावित होकर मैं भी उनकी बातोंको सुननेके लिये खड़ा हो गया। वे चाहे व्यापारकी बातें हों, चाहे अध्यात्मकी हों या परिवारकी, खूब दिल खोलकर और हँसकर बातें कर रहे थे। उनके अच्छे अन्दाजको देखकर मुझसे रहा नहीं गया और मैं पूछ बैठा कि 'भाई साहब! मैं आपकी उम्र पूछ सकता हूँ?' तो उन्होंने बताया 'I am an young man of eighty five years only' याने मैं सिर्फ पच्चासी वर्षका जवान हूँ। उनका जवाब सुनकर और जवाब देनेका तरीका देखकर मुझे भी आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नताकी अनुभूति हुई कि देखें इस आदमीका जीनेका अन्दाज कितना शानदार है। पच्चासी वर्षका होकर भी अभी अपनेको जवान मानता है। ऐसे आदमी जीवन जीनेका आनन्द लेते हैं, उन्हें मरनेकी बात सोचनेकी फुर्सत कहाँ। ऐसे व्यक्तिकी प्रसन्नता देखकर आत्महत्याके लिये जाता व्यक्ति भी अपनी आत्महत्याका इरादा बदल देगा और जीना चाहेगा। आत्महत्या वे ही लोग करते हैं, जो जीवनसे ऊब जाते हैं, निराश, हताश एवं उदास हो जाते हैं। जीवन उनको रास नहीं आता। जीवन भार लगने लगता है तो वे यही ठीक समझते हैं कि जीवनको ही समाप्त कर दो। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। न रहेगा शरीर और न उसकी समस्याएँ हमें परेशान करेंगी।

प्रातः-भ्रमणमें इस पच्चासी वर्षके जवानसे विदा लेकर आगे बढ़ा तो थोड़ी दूरपर एक दूसरे सज्जन मिले। वे भी हाफ पैंट-शर्ट एवं कपड़ेके जूते पहने हुए थे। वे भी बड़ी प्रसन्नतासे ३-४ लोगोंसे हँसकर बातें कर रहे थे। उस व्यक्तिकी प्रसन्नता देखकर मैं पुनः रुक गया, उनकी बातोंको सुननेके लिये। बातें सुननेके बाद उनकी भी उम्र पूछ बैठा तो उन्होंने कहा—'I am eighty two not out' याने मैं बयासी वर्षका हूँ, लेकिन जिन्दगी जीनेसे बाहर नहीं हुआ हूँ। ऐसे जिन्दादिल व्यक्तियोंका जीवन जीनेके लिये होता है, मरनेके लिये नहीं। ऐसे व्यक्ति जीवनको कभी भार नहीं समझते। वे कुछ करनेके लिये जीते हैं, मरनेके लिये नहीं। वे यह भी जानते हैं कि मरना तो निश्चित है, लेकिन जब मौतको आना है, आये, नहीं छोड़ेगी तो चला जाऊँगा उसके साथ। न तो मौतकी प्रतीक्षा करूँगा और न मौतसे घबराऊँगा। जिसका आना अवश्यम्भावी है, उससे क्या घबड़ाना?

अब मैं ऐसे व्यक्तिका चरित्र-चित्रण करूँगा, जो जीवनको जीता नहीं ढोता है। मैंने एक बाईस वर्षके जवान लड़केको देखा। उसके चेहरेपर न उल्लास है न उमंग। वह हमेशा उदास, निराश, हताश रहता है। वह निश्चय नहीं कर पाता कि मुझे क्या करना और क्या नहीं करना है? गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**संशयात्मा विनश्यति** यानी जो हमेशा संशयमें रहता है, निश्चयात्मक बुद्धि नहीं है, उसका नाश हो जाता है। अंग्रेजीमें भी कहावत है 'Indecisiveness is the cause of death' अर्थात् आपकी मौतका कारण आपका अनिर्णय है। इस सूत्रको स्पष्ट करनेके लिये मुझे

पंजाबके पूर्व मुख्यमन्त्री श्रीप्रतापसिंह कैरोंकी याद आती है। कैरों साहब देशके प्रथम इंजीनियर मुख्यमन्त्री उसी प्रकार थे, जैसे डॉ० विधानचन्द्र राय देशके प्रथम चिकित्सक मुख्यमन्त्री थे। कैरों साहब दिल्लीसे चण्डीगढ़ कारसे जा रहे थे। उनके बगलमें पंजाबके चीफ सेक्रेटरी एवं सामनेवाली सीटपर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीतलवार बैठे थे। गाड़ी जब चण्डीगढ़की ओर जा रही थी तो रास्तेमें एक खरगोश सड़क पार कर रहा था और इनकी गाड़ीसे दबकर मर गया। कैरों साहबने गाड़ी रुकवा दी और अपने प्राइवेट सेक्रेटरी तलवार साहबसे पूछा कि यह खरगोश दबकर क्यों मरा? तो उन्होंने जवाब दिया कि साहब इसकी मौत आ गयी तो मर गया, क्यों मर गया मैं कैसे बताऊँ? उनके बगलमें बैठे चीफ सेक्रेटरी साहबने पहले ही कह दिया कि साहब! इनके बाद आप मुझसे पूछेंगे कि खरगोश क्यों मरा, मैं भी नहीं बता पाऊँगा तो कैरोंने कहा कि जब खरगोश सड़क पार कर रहा था तो उसने जब गाड़ी आते हुए देखा तो पहले दुबक गया और उसके बाद वापस पीछे भागा। उसका दुबकना उसका Indecisiveness था, अगर वह बिना दुबके सड़क पार करता या वापस पीछे भागता तो बच जाता यानी उसकी मौतका कारण उसका Indecisiveness था न कि wrong decision । कैरों साहबने इस एक छोटेसे उदाहरणसे अपने अधिकारियोंको यह सन्देश दिया कि कभी भी आप Indecisive न रहें, निर्णयमें विलम्ब न करें। निर्णय चाहे जल्दी लें या विलम्बसे लें, गलती तो कभी-कभी होगी ही। अत: गलती होने दीजिये, लेकिन निर्णय लेनेमें कभी विलम्ब न करें। गलतीसे अवश्य सीख लेनेकी चेष्टा करें कि गलती भविष्यमें न होने पाये। जिनके जीवनमें न आनन्द है न उमंग है और न उल्लास है और निश्चयात्मक बुद्धि भी नहीं है, उनका जीवन जीना कभी सार्थक नहीं होगा और ऐसे ही व्यक्ति जीवनको ढोते हैं और मरनेकी प्रतीक्षा करते हैं।

एक सूत्रका और प्रतिपादन करना चाहूँगा, वह है ***'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'।*** जैसी हमारी दृष्टि होगी, वैसी ही सृष्टि हमें दिखायी पड़ेगी। हमें बताया जाता है कि हमारी सोच भी सकारात्मक होनी चाहिये, नकारात्मक नहीं। जब सकारात्मक सोच होगी तो हमें उसके गुण दिखायी देंगे और जब नकारात्मक सोच होगी तो हमें दोष दिखायी देंगे। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें केवल गुण-ही-गुण हों या केवल दोष-ही-दोष हों। एक दन्तकथा है कि दुर्योधनसे कहा गया कि एक अच्छा आदमी खोजकर लाओ तथा युधिष्ठिरसे कहा गया कि कोई बुरा आदमी खोजकर लाओ। दोनों खोजने निकलते हैं, लेकिन न तो दुर्योधनको कोई अच्छा आदमी मिला और न युधिष्ठिरको कोई बुरा आदमी मिला। कारण दुर्योधनको सबमें बुराई दिखती है और युधिष्ठिरको सबमें अच्छाई दिखती है। बस, यही है नकारात्मक सोच एवं सकारात्मक सोचका चित्रण। यही है—जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। सकारात्मक सोचवाला जीना जानता है, ढोना नहीं जानता है। फिर हम दूसरेको बुरा बतानेवाले होते कौन हैं? इसीलिये जीवन जीनेका आनन्द लेना है तो हमेशा सकारात्मक सोच रखें।

जीवनमें सुख और दु:ख सभीको आते हैं—चाहे जीवन जीनेवाला व्यक्ति हो या जीवन ढोनेवाला। लेकिन जिसको जीना आता है, वह सुख-दु:खको अपने कर्मोंका फल मानते हुए हँसी-खुशीसे सुख-दु:खको झेल लेता है और यह मानकर चलता है कि दु:ख आया है तो अब सुख भी आयेगा, लेकिन जिसे जीवन ढोना है उसको दु:ख और दुखी कर देगा और उसके जीवनकी उदासी निराशाको और अधिक बढ़ा देगा।

हर व्यक्तिको आजीवन सुखी और व्यस्त रहनेकी कला सीखनी चाहिये। ऐसा करके वृद्धावस्थाको भी सुखद बनाया जा सकता है। अगर आपका स्वास्थ्य नियन्त्रणमें है एवं विचार सकारात्मक हैं तो किसकी हिम्मत है, जो आपको बूढ़ा बना देगा। वृद्धावस्थामें कमाई नहीं होती है तो अपने खर्चेके लिये जवानीकी कमाईको अपनी हैसियतके अनुसार बचाकर सुरक्षित रखना चाहिये। अपने दाम्पत्य-जीवनको भी अनुकूल बनाकर रखें। दोनों एक-दूसरेका ख्याल रखें। जीवनमें

मधुरता रखें, कटुताको न आने दें। यह मानकर चलें कि जब रहना साथमें है तो हम प्रेमसे रहें। कभी जीवनमें प्रतिकूलता आये तो अन्य अनुकूल दाम्पत्य जीवनवालेसे सलाह ले सकते हैं। मेरा अनुभव है कि प्रतिकूलताका कारण केवल एक-दूसरेको समझनेकी कमी है। जहाँ समझ ठीक हुई, वहीं प्रतिकूलता भी अनुकूलतामें बदल जायगी और दाम्पत्य-जीवनमें मधुरता आ जायगी। अनुकूल दाम्पत्य-जीवन होगा तो जीवन जीनेमें मजा आयेगा, किंतु इसके विपरीत जीना भी भारस्वरूप हो जायगा।

हर वृद्ध व्यक्ति यह मानकर चले कि मरना तो निश्चित है, लेकिन हम मरनेकी प्रतीक्षा नहीं करेंगे; हम मरते दमतक काम करते रहेंगे। इसीको कहते हैं कि चलकर चितापर जाना यानी न कष्ट पाना और न कष्ट देना। यमराजको जब मेरी जरूरत होगी, वह अपने बकाया कामको पूरा करनेके लिये हमें बुला लेगा। जब मरना निश्चित है तो मरनेसे क्या डरना? सचमें जो मरनेसे नहीं डरेगा और न मरनेकी प्रतीक्षा करेगा, वही व्यक्ति जीवन जीता है। जो मरना चाहता है और भगवान्‌से अपने पास बुलानेकी प्रतीक्षा करता है। ऐसे ही व्यक्ति जीवनको ढोते हैं। जीवन मिला है जीनेके लिये, कुछ करनेके लिये, केवल मरनेके लिये नहीं। जबतक जियें हँसकर जियें। जीवनका पूरा आनन्द लें।

मनोमय कोशका स्वरूप एवं साधना-पद्धतिकी सार्वभौमिकता

(डॉ० श्रीविनोदजी शर्मा)

अन्नको हमारे ग्रन्थोंमें जीवनका आधार बताया गया है। अन्न इस शरीरमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारका जाना जाता है। स्थूल अन्न शरीरको बलवान् बनाता है और सूक्ष्म अन्न हमारे मन-मस्तिष्ककी खुराक बनकर हमारी आत्माको—हमारे प्राणोंको ऊँचा बनाता है। अन्नके रक्त, मज्जा, वीर्यादि परिणामको प्राप्त होनेवाले कार्योंके लिये छः कोशोंमेंसे एक कोश अन्नमय है। अन्नमयकोशका सम्बन्ध मनसे है। हमारे द्वारा खाये जानेवाले अन्नका अतिसूक्ष्म रूपमें परिणत अंश ही मन कहलाता है। अन्नसे मन बना है। इसलिये अन्न ही मनोमयकोशको बलवान् बनाता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एक सूत्रमें पिरोये मोतियोंकी तरह हैं। चित्तमें जो मनोमय कोश है, उसमें न जाने कितने जन्मोंके संस्कार भरे पड़े हैं। मनसे जुड़ी मनकी धाराएँ—मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार हैं—ये धाराएँ मनकी तरंगें हैं। ये तरंगें ही मनोंमें परिवर्तित होती हैं और इस प्रकार कालकी स्थितिके अनुसार एक-दो नहीं, अनेक मनवाला होकर मनुष्य न जाने कितने निर्माण करता है। निर्माणोंके ये संस्कार जो पूर्वके हैं, वे मनको अतिसूक्ष्म बनाते हैं। तब मनुष्य सूक्ष्म मनवाला होकर अध्यात्मके क्षेत्रमें रमण करता हुआ आत्मतत्त्वकी प्राप्तिकी ओर उन्मुख हो जाता है, उसकी प्राप्ति अपना परमलक्ष्य मान लेता है।

अन्नको प्राण इसलिये कहा गया है; क्योंकि इस अन्नसे प्राण बलवान् बनता है। प्राण ऊँचा बनता है। प्राणोंके बलवान् या ऊँचे होनेसे या बननेसे मन पवित्र और बलवान् बनता है। उसमें स्वाभाविक चंचलता नहीं रहती। मन स्थिरताको जैसे-जैसे प्राप्त करता है, वैसे-वैसे सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म पदार्थोंका चिन्तन करता है और उनकी उत्पत्ति आदिके रहस्योंको जानने लग जाता है। प्राण और मनमें आत्मा विश्राम करने लगता है, चेतनाके गुणोंका आना स्वाभाविक रूपसे शुरू हो जाता है। तब परमात्माका ज्ञान परमात्माके गुण उसमें प्रवेश होने शुरू हो जाते हैं। इसके बाद वह विज्ञानके क्षेत्रसे ऊपर उठकर परमात्माके असीम आनन्दमें प्रवेश पा लेता है।

हमारे द्वारा खाया जानेवाला अन्न शुद्ध, सात्त्विक एवं पवित्र होना चाहिये। यदि अन्न पवित्र नहीं होगा तो कोई भी व्यक्ति ऋषि-मेधाको प्राप्त नहीं कर सकता।

वेदका वास्तविक आचार्य तो ऋषि-मेधासे युक्त ही होता है। 'ऋत्' यानी परमसत्यका ज्ञान करानेवाली मेधा अर्थात् 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' से सम्पन्न। अन्न खाद्य है—भोजन है प्राणोंका। प्राण अन्नको निगलता है, ग्रहण करता है, और ग्रहणकर बलवान् होता है।

'**अन्नाद्भवन्ति भूतानि**' अन्नका कोश अन्न प्राण यानी अन्नसे उत्पन्न प्राणोंका आयतन है, घर है। अन्नमय प्राणोंसे बना है। प्राण और मनकी क्रियाके सम्बन्धका ज्ञान होनेसे मनुष्य ब्रह्मवेत्ता बनता है। रक्त, मज्जा आदि जितने पदार्थ हैं, वे मानव-शरीरके अंग हैं, ये अंग-रूप पदार्थ अन्नसे विकासको प्राप्त होते हैं, तथापि पदार्थोंका ज्ञान अन्नके सूक्ष्म अंशरूपमें परिणत मनके द्वारा ही होता है। अन्नका मनसे गहरा सम्बन्ध है। या कहना चाहिये कि 'अन्न ही मन है' अन्न ही ब्रह्म है और इस अन्नरूप ब्रह्मको अन्नसे जाना जा सकता है।

जितने भी शब्द हैं, वर्ण हैं, वाक्य हैं, वे शून्यमें विचरण कर रहे हैं। मन्त्रोंके समूह भी शून्यमें हैं। उन्हें अनुभव किया जा सकता है, सुना जा सकता है और साधनाकी परिपक्वावस्थामें देखा भी जा सकता है, पर यह सब मनके अति सूक्ष्म होनेपर ही सम्भव है। चेतन स्वरूप जो परमात्मा है, उसके प्रभावसे यानी उसकी शक्तिसे जगत्की हर वस्तु क्रिया कर रही है, गतिमान है। हिलती-डुलती या घूमती हुई हर वस्तुका—हर परमाणुका उस परमात्मासे सम्बन्ध है, परमात्माकी शक्तिसे जुड़े होनेसे। परमात्मा एक-एक कणमें, मनोंमें, हमारे विचारोंमें रमण कर रहा है।

जीवका और परमात्माका यह सम्बन्ध अनादि है। हम फूलको देखते हैं तो उसकी सुन्दरता उसकी बनावटपर मुग्ध हो जाते हैं, उसे स्पर्श करते हैं, सूँघते हैं और फेंक देते हैं। अपनेसे अलग कर देते हैं, पर क्या हममें इतनी सामर्थ्य है कि प्रकृतिके सारे फूलोंको अपनेसे अलग कर दें। कर भी नहीं सकते। सूक्ष्म रूपसे इस प्रकृतिमें पहलेसे ही कारणरूपसे पुष्पका अस्तित्व है, तभी तो वह कार्यरूपमें पहले कली, फिर उस कलीके खिलनेपर फूल बना। कोई नयी वस्तु इस संसारमें नहीं बनती, अपितु जो पहले थी, वही दूसरे रूपमें पैदा होती है। वस्तुका उसके रूपका अन्तरण है। स्थूल शरीरके अतिरिक्त सूक्ष्म और कारण दो अन्य शरीर भी हैं। हमारी प्रत्येक क्रियामें स्थूलसे अधिक सूक्ष्मका योगदान होता है। उस ब्रह्मकी साक्षात् उपलब्धि मनसे ही होती है। इसलिये उसे मनोमय कहा जाता है। मनका अभिमानी या मनके द्वारा मनन किया जाता है, जाना जाता है, इसलिये भी मनोमय है।

अन्न प्राणियोंसे पहले इस सृष्टिमें पैदा हुआ। अन्नसे जड़-चेतन समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पत्तिके बाद अन्नसे जीवित रहते हैं। अन्नसे ही बल प्राप्त करते हैं, बढ़ते हैं और अन्तमें मृत्युके बाद अन्नमें ही विलीन हो जाते हैं।

अमृत देवताओं और असुरोंके सम्मिलित प्रयाससे समुद्रका मन्थन करनेसे निकला था। सोम शब्दका प्रयोग चन्द्रमाके लिये भी किया गया है। सोम अन्नका भी नाम है। यह हमारा शरीर सोमरूप अन्नकी आहुतिके होते रहनेसे जीवित है। सूर्यमें सोम निरन्तर आहुत हो रहा है, जिसके कारण प्रकृतिकी सारी व्यवस्था चल रही है। वेदमें सोम एक तत्त्व है, जिसे साधनाके विभिन्न स्तरोंपर जाना जाता है।

अन्न प्राणियोंद्वारा खाया जाता है, और यह अन्न स्वयं भी प्राणियोंको खाता है, इसलिये यह अन्न कहलाता है। अन्न देहका वाचक है। चलने-फिरने बोलनेकी शक्ति अन्नके भक्षणसे आती है, इसलिये अन्न प्राण है। यह प्राण, अपान आदि पाँचों भेदोंवाला है और चक्षु, श्रोत, मन और वाक्‌द्वारा विषयोंकी उपलब्धि (ज्ञान)-का साधन होनेसे भी प्राण है।

इन्द्र यद्यपि द्वादश प्राणोंमें गिना जानेवाला एक प्राण है, पर यह इन्द्र प्राणका दूसरे प्राणोंसे अलग अपनी अग्निमय रूपतासे अपने आस-पासके प्रथम

और उत्तम प्राणोंको समिद्ध करता है। समिद्ध यानी प्रदीप्त करनेके गुणके कारण ऐन्ध है। ऐन्ध शब्दका अपभ्रंशरूप ही इन्द्र है। सूर्य जबतक सूर्य है तबतक सूर्य है, पर ज्यों ही इन्द्र नामका प्राण सूर्यके अन्दर प्रवेश करता है, तब सूर्य न होकर सविता कहलाने लगता है। सविता शब्दका अर्थ है—सबको सारे जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला। यह इन्द्र सूर्यकी प्रदीप्ति तो है ही। प्रदीप्ति क्रियाका ज्ञान होनेसे यही इन्द्र प्रदीप्तिका साधन भी है।

अग्निमें सोम (अन्न)-के आहुत होनेसे या सोमरूप इन्द्रके रहनेसे ही प्रकाश है। इन्द्रके अपने स्वरूपसे क्रियाका ज्ञान और क्रियारूपमें सूर्यके समस्त प्राणोंको समिद्ध करता है। समिद्ध शब्दका अर्थ है—प्राणोंको भली प्रकार एकत्रित करनेवाला। इन्द्रने जिस तत्त्वको खोजा है, उसे यक्ष या महद्यक्षके नामसे जाना जाता है। केन उपनिषद्‌में यक्ष शब्दका अर्थ आदिकारण ब्रह्म दिया गया है। वह सोम यानी उमासे युक्त ज्योति है, जिसे ब्रह्म कहा जाता है। वर्णोंमें प्रथम अकार अक्षर ब्रह्मका दर्शन है। इस अक्षर ब्रह्मका सर्वप्रथम इन्द्रने साक्षात्कार किया था। ज्योतिरूप ब्रह्मका दर्शन ही इन्द्रके द्वारा किया जानेवाला सोमपान है। सोमको ज्ञानमयी बृहती ज्योति भी कहा गया है। कहनेका आशय यह है कि सोमको बृहती विधानों क्रिया, व्यापारमें आवृत्त करके रखा था, जिसके कारण वह अप्रकट रहता है। पर जो 'ओम्' अर्थात् ज्योतिको जान लेता है यानी इस ज्योतिका साक्षात्कार कर लेता है। वह स+ओम् (सोम) सोममय या 'सोमपा'—सोमको पीनेवाला हो जाता है। **'स अमृतत्वाय कल्पते'**—वह अमृतरूप होकर अमृतके आनन्दमें लीन हो जाता है।

गीताके वाक्य **'अन्नाद् भवन्ति भूतानि'**—अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, यहाँ इस वाक्यके भूतानि शब्दको प्राणियोंका अथवा पंचमहाभूतोंका वाचक न मानकर यदि 'पंचात्मनः' 'पंचकोशाः' अथवा 'पंचप्राणाः' ऐसा मानें तो तैत्तरीय उपनिषद् और बृहदारण्यक उपनिषद्‌में कहे गये वाक्य सहज रूपसे अर्थ प्रकट करने लगेंगे। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, दिशाएँ और उपदिशाएँ—भूत तत्त्व हैं, यह तैत्तरीय उपनिषद्‌का कथन है। और इसी उपनिषद्‌के अन्य वाक्योंमें इनके देवता अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं। इनके प्राणोंको वाक् प्राणः चक्षुः मनः श्रोत्रं कहा गया है। इसलिये जो पृथ्वी आदि तत्त्व हैं, वही वाक् आदि हैं। इन्हींको भूत शब्दसे अभिहित किया गया है। फिर अन्न कौन-सा तत्त्व है? इसका उत्तर छान्दोग्योपनिषद्‌के वाक्य—'मन तत्त्व अन्नमय है' में बताया है। इसको और अधिक स्पष्टरूपमें बृहदारण्यक उपनिषद् बतलाता है—कि अन्न नाम है—अदिति नामक वाक्‌का। विकास इससे होते गये, उन्हें यह अपने अन्दर समाहित करती गयी। अदन् खानेके अर्थमें ग्रहण होनेसे अदनसे अत्ति बना। अन्नको खानेकी क्रियासे युक्त अत्ति या अदन अर्थको ग्रहणकर अदिति शब्द बना। या अत्रि—खानेकी क्रियावाले प्राणोंका समूहका नाम अदिति है।

अत्रिने चतुराज यज्ञ किया, इसलिये खाने यानी ग्रहण करनेके सम्बन्धमें सबसे पहले ज्ञान हुआ। अतः ग्रहण लगनेपर अत्रि ही वापस लाता है, ऐसी मान्यता है। अत्रिके सोम और अर्यमा दो पुत्र हुए। अत्रिको पैता महर्षि कहा जाता है।

वस्तुतः सर्वप्रथम उत्पन्न होनेके कारण अन्न प्राणियोंसे ज्येष्ठ तो है ही, श्रेष्ठ भी है; क्योंकि जैसे अनेक तुषावाले धानोंसे जैसे तुषरहित करके जिस तरह चावल निकाल लिये जाते हैं, उसी प्रकार अन्नमयसे लेकर आनन्दमयकोशपर्यन्त सम्पूर्ण शरीरोंकी अपेक्षा आन्तरतम ब्रह्मको तत्त्वज्ञानके द्वारा अपने प्रत्यगात्म रूपसे अपरोक्ष अनुभव करानेकी इच्छा रखनेवाले जितने भी शास्त्र हैं, वे सभी अविद्या परिकल्पित पंचकोशोंका बाध करके उस परमात्माका ही ज्ञान करानेकी योग्यता दिखाते हैं।

संत-चरित—

पर्यावरणप्रेमी सन्त श्रीजाम्भोजी महाराज

(श्रीबद्रीनारायणजी विश्नोई, एम०ए०, जे०आर०एफ०)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

श्रीमद्भगवद्गीताके चतुर्थ अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होगी, तब-तब मैं ही अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् प्रकट होता हूँ।

आजसे लगभग ६०० साल पूर्व जब राजस्थान प्रान्तमें राजनीतिक और धार्मिक अस्थिरताका वातावरण था, जनता मुगलों और अन्य विदेशी आक्रान्ताओंके शोषणसे त्रस्त और दुखी थी; ऐसे समयमें तत्कालीन समाजको सही दिशा देने और उनके प्रबोधनके लिये दिव्य शक्तिके रूपमें सन्त जाम्भोजी (सन् १४५१-१५३६) मानव-कल्याणके लिये अवतरित हुए। सन्त जाम्भोजीका जन्म सन् १४५१ में राजस्थानके नागौर जिला मुख्यालयसे लगभग ५५ कि०मी० दूर उत्तर दिशामें स्थित राजस्व ग्राम पीपासरमें हुआ था। उनकी माताका नाम हांसा (हंसा) देवी और पिताका नाम लोहट था। भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त होनेसे सन्त जाम्भोजीने अपनी सबद-वाणियोंमें भी 'विष्णु-सहस्रनाम' तथा भगवान् विष्णुके 'जप'के लिये मानवजातिको प्रबोधित किया। अपनी सबद-वाणियोंमें भी सन्त जाम्भोजीने ***'सहस्रनाम विस्नु रा जपो'*** और ***'विस्नू-विस्नू भण रे प्राणी'*** कहकर भगवान् विष्णुका भजन करनेके लिये जीवोंका आह्वान किया। सन्त जाम्भोजीने मानव-जीवनमें आचरणकी पवित्रतापर विशेष बल दिया और बाह्य आडम्बरोंका घोर विरोध किया। उनकी सबद-वाणियाँ हमें विचारोंकी शुद्धता और हृदयकी पवित्रताके लिये प्रेरित करती हैं और हमारे जीवनको सही दिशा देती हैं, जैसे कि—

'अड़सठ तीरथ हिरदै भीतर, बाहर लोकाचारा'

सन्त जाम्भोजी हमें सीख देते हैं कि मानव-हृदयके भीतर ही सभी तीर्थों (ईश्वर)-का निवास है, बाहर तो सांसारिक आचार-व्यवहार है, जिसमें दिखावा और आडम्बर अधिक तथा सच्चाई कम है। अस्तु, हे प्राणी! तुझे 'तत्त्व' प्राप्तिके लिये बहिर्मुखीकी बजाय अन्तर्मुखी होना चाहिये। उन्होंने ***'तिल-तिल आयु घटंती जावै, मरण ज नैड़ौ आवै'*** द्वारा जीवनकी मरणशीलताकी ओर इंगित किया है। इसलिये सन्त जाम्भोजीने मनुष्यको अपना सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याणके लिये समर्पित करनेको लेकर उपदेशित किया है। सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी'में ***'बारह करोड़ समाहन आयो'*** का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार उन्होंने कलिकालमें बारह करोड़ जीवोंके कल्याणके लिये अवतार लिया था। सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी', ***'उत्तम कुलि का उत्तम न होयबा। कारण क्रिया सारूं'*** द्वारा मानव जातिको यह बतलानेका प्रयास किया है कि उत्तम कुलमें जन्म लेनेमात्रसे कोई व्यक्ति उत्तम नहीं हो सकता है। व्यक्ति अपनी उत्तम क्रिया (आध्यात्मिक कर्म)-के कारण ही उत्तम बनता है। सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणियों' में 'सद्गुरु'की महत्तापर विशेष जोर दिया गया है। उनकी 'सबद-वाणियों'में उल्लेख आता है कि ***'सतगुरु मिलियो सत पंथ बतायो, भ्रांति चुकाई'***

अर्थात् सद्गुरुकी प्राप्ति, दर्शन या उनकी कृपासे ही जीवनको सही दिशा मिलती है तथा सभी सांसारिक भ्रान्तियोंका निवारण होता है। इसी तरह ***'गुरु बिन मुक्त न जाई'*** 'सबद-वाणी'से सन्त जाम्भोजीने यह सन्देश दिया है कि मानव-जीवनकी मुक्ति सद्गुरुकी कृपाके बिना सम्भव नहीं है। सन्त जाम्भोजीने तत्कालीन समाजमें फैली विभिन्न प्रकारकी बुराइयों, कुरीतियों और अज्ञानताको जड़से मिटानेके लिये सभी जातियोंको ज्ञानोपदेशितकर, उन्हें एक अभिनव दिशा दी। उन्होंने तत्कालीन समाजके धार्मिक और राजनीतिक माहौलमें व्याप्त अराजकताके खिलाफ जन-मानसको अपनी अमर वाणियोंसे सचेत किया। सन्त जाम्भोजीने समाजमें व्याप्त नशाखोरी, मांस-मदिरा आदिको सर्वदा त्याज्य कहकर, जनताको उनसे हमेशा दूर रहनेके लिये प्रेरित किया। सन्त जाम्भोजीने मानव-जीवन और उनके आचरणसे जुड़े २९ नियम बतलाकर सन् १४८५ (संवत् १५४२)-में 'विष्णोई (विश्नोई) सम्प्रदाय' की स्थापना की। सन्त जाम्भोजीकी सबद-वाणियोंसे प्रेरित होकर 'विष्णोई' (विश्नोई) सम्प्रदायने इन २९ नियमोंको अपनाया। ये २९ नियम इस प्रकार हैं—

१-तीस दिनोंतक सूतक (जन्म-कालावधिके सूतक)-का पालन करना।

२-रजस्वला स्त्री (मासिक धर्मके दौरान)-का पाँच दिनोंके लिये गृहस्थ कार्योंसे पृथक् रहना।

३-प्रतिदिन सबेरे (ब्रह्ममुहूर्तमें) स्नान करना।

४-शील (आचरण एवं व्यवहारकी पवित्रता)-का पालन करना।

५-सन्तोष रखना।

६-बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता रखना।

७-द्वि-काल संध्या-उपासना करना।

८-सांझ (संध्या)-को आरती और श्रीहरिकी स्तुति करना (गुणगान)।

९-सच्चे मनसे (प्रेमपूर्वक) हवनादि पवित्र कर्मोंसे जीवनका कल्याण करना।

१०-पानी और दूधको अच्छी तरह छानकर तथा ईंधनको बीनकर उपयोगमें लेना।

११-वाणीपर संयम रखना (सोच-विचारकर बोलना)।

१२-सद्गुरुकी सीखको आत्मसात् करते हुए, हृदयमें क्षमा एवं दयाके भाव रखना।

१३-चोरी नहीं करना।

१४-किसीकी निन्दा नहीं करना।

१५-झूठ नहीं बोलना।

१६-किसी तरहके वाद-विवादमें नहीं पड़ना।

१७-अमावस्याका व्रत रखना।

१८-भगवान् विष्णुके भजन, स्तुति आदि करते रहना।

१९-जीव-जन्तुओंके प्रति दया और उनका पालन-पोषण करना।

२०-हरे वृक्षोंको नहीं काटना।

२१-सन्त जाम्भोजीका कहना है कि बुढ़ापेमें जर्जर (कृशकाय) होकर मरनेकी बजाय उससे पहले ही जीव-जन्तुओं एवं हरे वृक्षोंके रक्षार्थ बलिदान हो जाना श्रेयस्कर है। ऐसे व्यक्तिको मरणोपरान्त निश्चित रूपसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ***(अजर जरै जीवत मरै वै वास स्वर्ग ही पावै)***।

२२-स्वयंके हाथोंसे रसोई बनाना तथा उसे अन्य लोगोंके स्पर्शसे दूर रखना।

२३-अपनी कीर्ति और यशको सदा अमर बनाये रखना।

२४-बैलका बन्ध्याकरण नहीं करवाना।

२५-अफीमका सेवन नहीं करना।

२६-तम्बाकूसे दूर रहना।

२७-भाँगका सेवन नहीं करना।

२८-शराब और मांसका सेवन नहीं करना।

२९-नीले वस्त्र नहीं पहनना।

उनके बतलाये नियम जीव-जन्तुओंके प्रति दया, उनके पालन-पोषण और पर्यावरण-संरक्षण (हरे-

वृक्षोंको क्षति नहीं पहुँचाना)-के प्रति विश्नोई सम्प्रदायकी प्रतिबद्धताको प्रकट करते हैं। जैसे कि नियमोंमें कहा गया है कि—

'जीव-दया पालणी, रूंख लीलौ नहं (नहीं) घावै।'

सन्त जाम्भोजीके समकालीन अन्य सन्तों जैसे गुरुनानक (सन् १४६९-१५३९) और मीराबाई (सन् १४९८-१५४६)-की पवित्र और अमर वाणियाँ भी मानव-समाजको सही दिशा देती हैं और उनका भी अपना महत्त्व है, लेकिन सन्त जाम्भोजीकी अमर वाणियाँ मानव-जीवनके चरित्र, आचरण-शुद्धि और समाज-सुधारके साथ-साथ जीव-जन्तुओंके प्रति दया और पर्यावरण-संरक्षणकी संकल्पनापर विशेष बल देती हैं। सन् १५३६में अपनी साधनामें लीन रहते हुए, भगवान् विष्णुके भजन करते हुए, सन्त जाम्भोजी अपने इष्टके भावलोकमें समा गये। बीकानेर जिलेके नोखा तहसील मुख्यालयसे लगभग १८ कि०मी० दूर पूर्व दिशामें नोखा-सुजानगढ़ राजमार्ग संख्या २० पर स्थित राजस्व ग्राम मुकाममें सन्त जाम्भोजीकी समाधि स्थित है।

ध्यातव्य है कि आजसे लगभग ५७० वर्ष पूर्व सन्त जाम्भोजीने जीव-जन्तु और पर्यावरण-संरक्षणके लिये मानव-जातिका बड़ी मजबूतीसे आह्वान किया था। उन्होंने प्रकृति और पर्यावरणके प्रति मानवके तालमेल बिगड़नेसे मानव-जातिके अस्तित्वपर मँडराते भावी खतरोंके प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त की थी और मानव जातिको चेताया भी था। अस्तु सन्त जाम्भोजीने अपनी वाणियोंमें 'हवन' के धार्मिक और पर्यावरणीय महत्त्वको भी समझाया, जिसे आज विज्ञान भी मान रहा है कि 'हवन' में प्रयुक्त समिधाएँ—चन्दन, आम, शमी, पलाश, अशोक और मदार तथा घृत, गुग्गल आदि विभिन्न हवन-सामग्रियोंसे प्रसूत धूम (धुएँ)-से श्वास आदिसे जुड़ी अनेकों बीमारियाँ ठीक होती हैं तथा वायुमण्डलमें मौजूद मानव-जाति और पेड़-पौधोंके लिये हानिप्रद विभिन्न विषैले कीटाणु भी नष्ट होते हैं। आज भारतसहित विश्वके अनेक देशोंके वैज्ञानिकोंद्वारा किये गये अनुसंधान तथा राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थानके शोधने भी इस बातको स्वीकारा है। वर्तमानमें विश्वके लगभग २०० देश स्टॉकहोम (१९७२)-से लेकर क्योटो (१९९७), जोहान्सबर्ग (२००२), रियो प्लस २० (२०१२) आदि सम्मेलनोंमें पर्यावरण संरक्षणसे जुड़े अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों (क्योटो-प्रोटोकॉल एवं अन्य)-के उद्देश्योंको लागू करवाने, वायुमण्डलमें ग्रीनहाउस गैसोंके उत्सर्जनको कटौतीके निर्धारित वैश्विक लक्ष्योंतक सीमित करने और '**पारिस्थितिकी तन्त्रकी बहाली**' सहित विभिन्न पर्यावरणीय विषयोंको लेकर चिन्तित हैं।

आज विश्व '**सतत विकास**' के लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिये सामाजिक और आर्थिक विकासको पर्यावरणसे जोड़कर देख रहा है। भावी पीढ़ियोंकी जरूरतोंसे समझौता किये बिना, वर्तमानमें विकासकी निरन्तरता रखना हमारे लिये बहुत ही कठिन कार्य है। '**कोविड-१९**' महामारीके बाद उत्पन्न वैश्विक हालात हमें बतलाते हैं कि पर्यावरण संरक्षणके बिना '**सतत विकास**' की संकल्पना सिर्फ एक सुनहरा स्वप्न है। कोरोना महामारीके पश्चात् विकासकी संकल्पनाको अब नये सिरेसे परिभाषित किया जाने लगा है, जिसने '**अभिनव विकासवाद : कोरोना महामारीके पश्चात्**' की एक नवीन संकल्पनाको जन्म दिया है, जो स्वास्थ्य सेवाओंकी बेहतरी और पर्यावरण-संरक्षणको सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए, अब आगे बढ़ रही है। 'कोविड-१९' महामारीके बाद उत्पन्न परिस्थितियाँ दर्शाती हैं कि अब हमें पर्यावरण-संरक्षणके प्रति हमारी सोच, रवैये और नजरियेको बहुत ही संवेदनशील और सकारात्मक करनेकी जरूरत है। अब हमें हमारी नैतिक जिम्मेदारी और दृढ़ राजनीतिक इच्छा-शक्तिसे पर्यावरण स्थिरताको सुनिश्चित करते हुए, जैव विविधताको अक्षुण्ण रखना होगा। ऐसे समयमें सतत विकास और पर्यावरण-संरक्षणसे जुड़ा सन्त जाम्भोजीका चिन्तन-मनन और इस विषयमें उनकी दूरदृष्टिके वैज्ञानिक मायने और अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

तीर्थ-दर्शन—

ब्रजक्षेत्रका प्राचीन तीर्थ—वटेश्वर

(श्रीजगन्नाथजी लहरी)

मथुराके चारों ओर चौरासी कोसतकका क्षेत्र ब्रजक्षेत्र कहलाता है। इसी ब्रजक्षेत्रके अन्तर्गत आगरा जिलेकी बाह तहसीलमें प्राचीन तीर्थस्थल वटेश्वर है। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें अवतार लिया था, परंतु उनकी पैतृक भूमि वटेश्वर ही थी। वटेश्वर, जो शौरिपुरके नामसे भी ज्ञात है, उस समय राजा शूरसेनकी राजधानी थी। राजा शूरसेनके सातवें पुत्र राजकुमार वसुदेवका विवाह मथुराके राजा उग्रसेनकी पुत्री तथा कंसकी बहिन देवकीके साथ हुआ था। विवाहोपरान्त जब राजकुमार वसुदेव देवकीको विदा कराके ले जा रहे थे, तो बहिन देवकीके प्रति अत्यधिक स्नेहके कारण कंस ही उनका रथ चला रहा था, परंतु उसी समय एक आकाशवाणी हुई कि 'हे कंस! तू अपनी जिस बहिन देवकीको इतनी हँसी-खुशीके साथ विदा कर रहा है, उसीकी कोखसे जन्मा आठवाँ पुत्र तेरा काल बनेगा।'

इस आकाशवाणीको सुननेके बाद कंसका हृदय-परिवर्तन हो गया और उसने अपनी बहिन देवकी और बहनोई वसुदेवको गिरफ्तार करके कारागारमें बन्द कर दिया। कारागारमें ही देवकीने एक-एक करके सात संतानोंको जन्म दिया। कंस देवकीके संतानोत्पत्तिकी सूचना पाते ही तत्काल जेलमें जाकर उसकी संतानका वध कर डालता था। इस प्रकार उसने देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या कर दी। देवकीके सातवें गर्भका संकर्षणकर योगमायाने उसे वसुदेवकी दूसरी पत्नी रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया, जो कंसके भयसे उस समय व्रजमें नन्दजीके यहाँ रह रही थी। आठवीं संतानके रूपमें स्वयं श्रीविष्णु भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें देवकीके यहाँ अवतरित हुए। उस समय एक अलौकिक चमत्कार हो गया। कारागारके सभी पहरेदार गहरी निद्रामें सो गये और कारागारके फाटक स्वयं खुल गये। वसुदेव एक टोकरीमें नवजात शिशुको सिरपर रखकर उफनती हुई यमुनाको पार करके गोकुल पहुँचे, बाबा नन्दकी धर्मपत्नी माता यशोदाने उसी समय एक कन्याको जन्म दिया था। वसुदेवने श्रीकृष्णको कन्याकी जगह लिटा दिया और कन्याको टोकरीमें रखकर पुनः यमुना पार करते हुए कारागारमें वापस आ गये। वसुदेवके सकुशल

वापस आनेके बाद कारागारके फाटक स्वत: ही बन्द हो गये। नवजात कन्या रुदन करने लगी, जिसे सुनकर पहरेदार जाग गये और उन्होंने कंसको आठवीं संतानकी सूचना दी। कंस तो इसी क्षणकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह तत्काल कारागार पहुँचा और उसने देवकीकी गोदसे कन्याको छीनकर पत्थरपर दे मारा। कन्या योगमाया थी, कंसके हाथसे छूटकर वह आकाशमें चली गयी और बोली—'मूर्ख! तुझे मारनेवाला जन्म ले चुका है।' उधर देवकीकी असली सन्तान भगवान् श्रीकृष्णका लालन-पालन तो बाबा नन्दके घर गोकुलमें हो रहा था। कालान्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें आकर कंसका वध करके अपने माता-पिता वसुदेव और देवकीको कारागारसे मुक्त किया। आज सारा विश्व भगवान् श्रीकृष्णको मथुरा, गोकुल, वृन्दावनसे ही सम्बन्धित जानता है, परंतु बहुत कम लोगोंको यह ज्ञात है कि भगवान् श्रीकृष्णकी पैतृक भूमि तो वटेश्वर है।

वटेश्वर सतयुगसे ही एक पवित्र तीर्थ रहा है, इसकी महिमामें यह मांगलिक श्लोक प्रसिद्ध है—

तुंगप्रभासो गुरुचक्रपुष्करं गयाविमुक्तो बदरी वटेश्वरः।
केदारपम्पाशरनैमिषारकं कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा॥

इस प्रकार भारतके प्रमुख प्राचीन पवित्र तीर्थोंमें वटेश्वरकी भी गणना है, जिससे वटेश्वरके महत्त्वको भली प्रकार समझा जा सकता है।

राजा शूरसेनके समयमें वटेश्वर (शौरिपुर)-का विस्तार बारह योजनमें था। आगरा, शिकोहाबाद, भिण्ड, अटेर आदि सभी जनपद इसी महाजनपदमें शामिल थे। राजा शूरसेनके ज्येष्ठ पुत्र समुद्रविजयने उनके बाद शासनकी बागडोर सँभाली। समुद्रविजयके पुत्र और भगवान् श्रीकृष्णके चचेरे भाई श्रीनेमिकुमारकी बारात जब जूनागढ़ पहुँची, तो वहाँ नेमिकुमारने बरातियोंके मांसाहारके लिये सैकड़ों पशुओंको जब एक बाड़ेमें बन्द देखा तो उन्हें वैराग्य हो गया और वे विवाह न करके गिरनारपर्वतपर तपस्याहेतु चले गये। यही नेमिकुमार जैन धर्ममें २२वें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार वटेश्वरके इस राजवंशको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके एक ही परिवारके दो राजकुमारोंने एक ही समयमें सनातन धर्म और जैन धर्ममें शीर्षस्थान प्राप्त किया। वटेश्वर (शौरिपुर) जैन धर्मावलंबियोंके लिये एक पवित्र क्षेत्र है। प्रतिवर्ष देशके कोने-कोनेसे लाखों जैन यात्री यहाँ भगवान् नेमिनाथके दर्शनार्थ आते हैं।

वटेश्वर यमुनाके तटपर बसा हुआ है। यहाँ १०८ मंदिर पंक्तिबद्ध बने हुए हैं। यमुना-तटपर ही एक विशाल वट वृक्ष है, उसके निकट ही वटेश्वरनाथका बड़ा शिव-मन्दिर है। यमुनासे थोड़ी दूरपर शौरिपुरका प्रसिद्ध जैन मन्दिर है। जैन मतके श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके लिये यह स्थान आदरणीय है। वह स्थान जहाँ श्रीनेमिनाथजीकी जन्मभूमि है, वहाँ प्रसिद्ध जैन मुनि सुप्रतिष्ठितकी ज्ञानकल्याणक भूमि है और धन्य मुनि एवं यमकेवलीकी निर्वाणभूमि है। इस प्रकार वटेश्वर जैन धर्मका प्रमुख स्थान है।

पुरातत्त्वकी सामग्रीसे यह स्थल भरा पड़ा है। यहाँपर हजारों ही नहीं, लाखों कलात्मक मूर्तियाँ खुदाईमें प्राप्त हुई हैं। दसवीं सदीतककी कुछ प्रतिमाएँ लखनऊ संग्रहालयमें सुरक्षित हैं तथा शौरिपुरमें तेरहवीं शताब्दीतककी सैकड़ों प्रतिमाएँ मंदिरके संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। यहाँसे एक मील दूर पुराना खेड़ा नामक एक स्थान है, जहाँपर पुरातत्त्व-सम्बन्धी सामग्रीका एक विशाल भण्डार छिपा होनेका अनुमान है। वटेश्वरमें भवन-निर्माणके लिये बुनियाद खोदते समय अब भी मूर्तियाँ मिलती हैं। यहाँके निवासियोंने हजारोंकी संख्यामें पुरातत्त्वकी यह अमूल्य निधियाँ यमुनामें विसर्जित कर दी हैं। हिन्दू देवोंके मन्दिरोंमें भी सैकड़ों खण्डित मूर्तियाँ रखी हुई हैं, जिनकी पूजा की जाती है। जैन मूर्तियोंके अतिरिक्त यहाँ बौद्ध मूर्तियाँ भी पायी गयी हैं, परंतु यमुनाके तटपर जो १०८ मंदिर बने हुए हैं, उनमेंसे अधिकांश शिव-मन्दिर हैं।

वटेश्वरमें एक और विशेषता यह है कि यमुनाकी

धारा यहाँ विपरीत दशामें प्रवाहित होती है। जहाँ यमुना सब जगह पूर्ववाहिनी हैं, वहाँ वटेश्वरमें यमुना कई मीलतक पश्चिमवाहिनी है। यमुना वटेश्वरके तीनों ओर बहती हैं। यमुनाका यह प्रवाह एक बड़ा बाँध बनाकर मोड़ा गया है।

बाँधके निर्माणके बाद हजारों एकड़ अतिरिक्त भूमि निकल आयी, जहाँ कार्तिक शुक्ल पंचमीसे लेकर अगहन वदी पंचमीतक एक विशाल पशु-मेला प्रतिवर्ष लगता है। कोई भी निश्चित रूपसे यह नहीं बता सकता है कि यह मेला किसने और कब प्रारम्भ किया था? परंतु अब इस मेलेका प्रबन्ध जिला परिषद्, आगरा करती है। मेलेके दौरान ही कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको लाखों तीर्थयात्री यमुनाके पवित्र जलमें स्नान और शिवजीकी पूजाहेतु यहाँ आते हैं।

वटेश्वर कई बार बसा और उजड़ा है। प्रारम्भमें जहाँ आज शौरिपुर है, वहीं वटेश्वर बसा था। उसके बाद आदिशक्ति बड़ी देवीजीके मन्दिरके पास वटेश्वर बसा और फिर यमुनाके तटपर वटेश्वर बसाया गया। वटेश्वर एक चमत्कारिक स्थल है, जहाँ जैन और हिन्दुओंके सैकड़ों मन्दिर बने हुए हैं। इतिहास यह बतलाता है कि कुछ मुस्लिम शासकोंने हिन्दू मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट करके मूर्तियोंकी तोड़-फोड़ भी की थी। अयोध्याका श्रीरामजन्मभूमिका मन्दिर, वाराणसीका विश्वनाथजीका मन्दिर और मथुराका श्रीकृष्णजन्मभूमिका मन्दिर मुस्लिम शासकोंकी धर्मान्धता और अत्याचारके साक्षी हैं, परंतु ब्रजक्षेत्रमें स्थित होनेपर भी वटेश्वरमें किसी भी शासकने न तो मन्दिरोंका विध्वंस किया और न एक भी मूर्तिकी तोड़-फोड़ की गयी। इसके विपरीत वटेश्वरकी भूमि इस बातकी साक्षी है कि भारतके पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी जगहोंसे दक्षिण भारत, गुजरात, बनारस, मथुरा, कश्मीर आदि स्थानोंसे सैकड़ों पण्डित परिवार अपने धर्मकी रक्षाहेतु वटेश्वरमें शरण लेने आये और यहीं बस गये। आज भी वटेश्वरमें इन पण्डितोंके अलग-अलग मोहल्ले बसे हुए हैं। जहाँगीरके शासनकालमें तो यहाँ वाजपेयी ब्राह्मणोंने एक विशाल यज्ञ किया था, जिसका हवनकुण्ड और यज्ञकी पचास बीघा भूमि आज भी सुरक्षित है। पता नहीं ऐसी कौन-सी शक्ति थी, जिसके कारण वटेश्वरकी इस पुण्यभूमिको अपवित्र करनेका विधर्मियोंको साहस नहीं हुआ? यही नहीं, संन्यासी संप्रदायका भी वटेश्वर एक प्रमुख गढ़ है। यहाँ दसनामी संन्यासी सरस्वती, गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत, अरण्य, तीर्थ, आश्रम, सागर इत्यादिका भी वटेश्वर सैकड़ों वर्षोंसे एक प्रमुख गढ़ है। कुमारिल भट्टने जगद्गुरु शंकराचार्यको वटेश्वरमें आमन्त्रित किया था। स्कन्दपुराणमें भी वटेश्वरके सम्बन्धमें विशद वर्णन मिलता है। भगवान् श्रीकृष्ण मथुराके भांजे थे, अतः अनेक संतोंने वटेश्वरको भगवान् श्रीकृष्णकी पैतृक भूमि होनेके कारण तीर्थोंके भांजेके रूपमें भी मान्यता दी है।

पावस ऋतुमें ऐसा कौन-सा व्यक्ति होगा, जिसका हृदय आल्हा सुनकर गद्गद न हो जाता हो। इसी आल्हाके प्रमुख नायक आल्हा और ऊदलने भी वटेश्वरमें एक टीलेपर हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित की थी। घाटसे कुछ दूर यमुनाके टीलेपर जो विशाल हनुमान्जीकी मूर्ति है, उसे ही लोग आल्हा-ऊदलद्वारा स्थापित बताते हैं। आज ब्रजमें मथुराके गौरवके कारण वटेश्वर एक अल्पख्याति तीर्थ रह गया है, परंतु अतीतमें वटेश्वरका गौरव महान् था और इसे भदौरिया राजाओंकी राजधानी होनेका भी गौरव प्राप्त था। भदौरिया नरेशोंके भवनोंके विशाल खण्डहर इस नगरकी भव्यताके साक्षी हैं। वटेश्वरके मन्दिरोंमें देशकी अनेक कला-शैलियोंके दर्शन होते हैं। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी जगहोंके पण्डितों और शिल्पियोंने वटेश्वरके गौरवको बढ़ानेमें अपना अनुपम सहयोग दिया था, परंतु वटेश्वर-जैसे प्राचीन और पवित्र पुण्यभूमिके विशाल मन्दिर और घाट धीरे-धीरे यमुनाकी गोदमें विलीन होते चले जा रहे हैं, जिनकी रक्षाहेतु पुनरुद्धार एवं पुनः निर्माणकी आवश्यकता है। पुरातत्त्वकी यह धरोहर हम सबके लिये रक्षणीय है। हिंदू और जैन संस्कृतिके प्रमुख तीर्थ, भगवान् श्रीकृष्ण और नेमिनाथकी पैतृक भूमिकी पवित्र रजको शत-शत नमस्कार!

गो-चिन्तन—

सन्त माधवदासकी गोभक्ति

सन्त माधवदासका जन्म वि० सं० १६०१ में कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको सूरतके सौदागरगंजमें हुआ था। इनके पिताका नाम करवत सिंह और माताका नाम हिरलदेवी था। इनके पूर्वज मेवाड़के केलवाड़ा नामक परगनेके निवासी थे और प्रसिद्ध सिसोदिया वंशके सूर्यवंशी क्षत्रिय थे।

बाल्यावस्थामें माधवदासजीकी मुखाकृति देखकर एक अवधूत महात्माने उनके पितासे कहा था कि यह बालक कोई महान् दिव्यात्मा होगा। ये बचपनसे ही बड़ी उदार वृत्तिके थे और दरवाजेपर आये भिक्षुकको निराश नहीं जाने देते थे। जब ये मात्र पाँच वर्षके ही थे, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया था। अतः इनका पालन-पोषण इनकी माताद्वारा ही हुआ। माताने इन्हें अच्छा विद्याभ्यास तो कराया ही, एक राजपूत वीरके लायक शस्त्रास्त्रकी योग्यता भी इन्हें बचपनमें ही प्राप्त हो गयी थी।

एक बार ये भ्रमण करते हुए अहमदाबादके पास पहुँचे। वहाँ इन्होंने देखा कि कुछ मुसलमान ग्वालोंसे उनकी गायें छीनकर ले जा रहे हैं। ईदका त्योहार था और हाकिमकी आज्ञा थी, इसलिये कोई कुछ बोल भी नहीं सकता था। पचास मुसलमान सैनिकोंकी एक टुकड़ी गायोंको घेरकर लेकर चल दी, मुसलमानी शासनमें ग्वाले भला रोनेके अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे? गायें रँभा रही थीं, चाबुकोंकी मार खा रही थीं, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। यह सब माधवदासजीसे देखा न गया। उनका राजपूती रक्त उबल पड़ा। वे तलवार लेकर उनपर टूट पड़े। एक तरफ अकेले माधवदास और दूसरी ओर पचास सैनिक! पर सिंह सिंह होता है, मांसलोभी सैकड़ों सियारोंका झुंड उसकी एक दहाड़पर भाग खड़ा होता है।

माधवदासमें सत्साहस था, गोमाताके प्रति प्रेम था; उधर सैनिकोंमें था सत्ताका अभिमान। माधवदासने उन यवन सिपाहियोंको गाजर-मूलीकी तरह काटना प्रारम्भ किया। सिपाहियोंकी जानपर बन आयी। कुछ तो मारे गये और कुछ भाग गये। सिसोदिया वंशके उस वीरने सब गायें छुड़ा लीं और रोते हुए ग्वालोंके सुपुर्द कर दीं।

माताकी प्रेरणासे माधवदासजीने सद्‌गुरुकी शरण ली। वे समर्थदास नामक एक योगीके शिष्य हो गये। सन्त माधवदासजी सच्चे सन्त थे, उनका अधिकांश समय तीर्थाटनमें ही बीतता था। गोमाताके प्रति उनकी अद्‌भुत भक्ति थी। उन्होंने दिल्लीके शाही कसाईखानेके जल्लाद हाशमको अपने उपदेशसे भगवान्‌की भक्तिमें लगा दिया। मुलतानके मुसलिम सूबेदारने उन्हें तरह-तरहसे प्रताड़नाएँ देनेकी कोशिश की, परंतु माधवदासजी सिद्ध सन्त थे, वह उनका बाल भी बाँका न कर सका और अन्तमें उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की और भविष्यमें किसीको न सतानेकी कसम खायी।

वि०सं० १६५२ में आप इस नश्वर शरीरको त्यागकर अविनाशी परब्रह्म प्रभुके स्वरूपमें अवस्थित हो गये। धन्य हैं ऐसे सन्तरत्न और गोभक्त माधवदासजी और धन्य है भारत-धरा ऐसे सपूतको प्राप्तकर!

बोध-कथा—

सभ्यता

फ्रान्सका राजा हेनरी चतुर्थ एक दिन पेरिस नगरमें अपने अंगरक्षकों तथा उच्चाधिकारियोंके साथ कहीं जा रहा था। मार्गमें एक भिक्षुकने अपनी टोपी सिरसे उतारकर मस्तक झुकाकर उसे अभिवादन किया। हेनरीने भी अपनी टोपी उतारकर सिर झुकाकर भिक्षुकको अभिवादन किया। यह देखकर एक उच्चाधिकारीने कहा—'श्रीमान्! एक भिक्षुकको आप इस प्रकार अभिवादन करें, यह क्या उचित है?'

हेनरीने सरलतासे उत्तर दिया—फ्रान्सका नरेश एक भिक्षुक-जितना भी सभ्य नहीं, यह मैं सिद्ध नहीं करना चाहता।

सत्संग सन्तोंके संग—

सुख-दुःख

[ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित]

❀ सुखकालमें जो सुखके चले जानेकी विस्मृति होती है, उसीसे दुःख आता है।

❀ मंगलमय विधानसे दुःख बार-बार इसलिये आता है कि सुखका प्रलोभन मिटे, रसकी अभिव्यक्ति हो, जो मानवमात्रकी मौलिक माँग है।

❀ जब हम अपनी मौलिक माँगको भूलकर सुखमें लिप्त हो जाते हैं, तब हमें सजग करनेके लिये दुःख आता है।

❀ वास्तवमें मनुष्यको अपने वास्तविक सुख-दुःखका ज्ञान नहीं है। वह अपने मनकी बात पूरी होनेको सुख और पूरी न होनेको दुःख मानता है।

❀ जब मनुष्य सचमुच दुखी हो जाता है, तब उस समय उसकी किसी प्रकारके सुख-भोगमें प्रवृत्ति नहीं होती और भोगवासनाका अन्त हो जाता है।

❀ जब संसारसे अरुचि हो जाती है, तब वह दुःख मनुष्यको प्रभुसे मिला देता है; क्योंकि सुखभोगकी रुचि और प्रवृत्तिसे ही मनुष्य उनसे विमुख होता है और भोगवासनाकी निवृत्तिसे भगवान्‌के सम्मुख एवं संसारसे विमुख होता है।

❀ कोई भी बुराई किसीके जीवनमेंसे उस समयतक नहीं निकल पाती, जबतक कि बुराईजनित वेदनाकी मात्रा बुराईजनित सुख-लोलुपतासे अधिक न बढ़ जाय।

❀ जिस समय आप अपनी भूलसे पीड़ित होंगे, भूलजनित सुख-लोलुपताका नाश होगा और जब भूलजनित सुख-लोलुपताका नाश हो जायगा, तब भूल स्वतः पुनः उत्पन्न नहीं होगी।

❀ हम संसारको असत्य और दुःखद जानकर भी उसका त्याग और भगवान्‌को अपना तथा सुखधाम मानकर भी उनसे प्रेम नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम संसारसे सुखकी आशा करते रहते हैं एवं उस सर्व-समर्थ प्रभुको सरल हृदयसे अपना नहीं मानते।

❀ जो दूसरे प्राणियों या पदार्थोंको अपने सुख और दुःखका हेतु मानता है, उसका सब प्रकारसे पतन होता है; क्योंकि जिस प्राणी या पदार्थको वह अपने सुखमें हेतु मानता है, उसमें उसका राग हो जाता है और जिसको दुःखका हेतु मानता है, उससे द्वेष हो जाता है।

❀ जबतक मनुष्य संसारसे कुछ लेनेकी आशा रखता है, तबतक वह कभी सुखी नहीं हो सकता; क्योंकि संसार अनित्य और क्षणभंगुर है। उससे जो कुछ मिलता है, उसका वियोग अवश्यम्भावी है।

❀ प्रत्यक्ष देखा जाता है कि स्वावलम्बी मनुष्य जितना सुखी और प्रसन्न रहता है, पराधीन व्यक्ति कभी वैसा प्रसन्न नहीं रह सकता। मनुष्य अज्ञानसे ऐसा मान लेता है कि मुझे बड़ा भारी अधिकार मिलने या बहुत-सी सम्पत्ति मिलनेसे मैं सुखी हो जाऊँगा, परंतु जैसे-जैसे वैभव बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे उसके जीवनमें पराधीनता, भय, रोग, भोगासक्ति और कठोरता आदि बढ़ते जाते हैं, जो प्रत्यक्ष ही दुःखके कारण हैं।

❀ किसीका भी संयोग नित्य सुख देनेवाला नहीं है; क्योंकि अपने प्रिय-से-प्रिय मित्रसे भी मनुष्य अलग होना चाहता है। कोई भी वस्तु कितनी भी प्रिय क्यों न हो, उससे भी अलग होता है। यदि सचमुच कोई व्यक्ति, वस्तु और देश-काल सुखप्रद होता तो प्राणी उसे कभी नहीं छोड़ता, परंतु ऐसा नहीं होता।

सुभाषित-त्रिवेणी

भक्तके लक्षण [Characteristics of a devotee]

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

He who is free from malice towards all beings, friendly and compassionate, and free from the fellings of 'I' and 'mine', balanced in joy and sorrow, forgiving by nature, ever-contented and mentally united with Me, nay, who has subdued his mind, senses and body, has a firm resolve, and has surrendered his mind and reason to Me—that devotee of Mine is dear to Me.

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता; तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है।

He who is not a source of annoyance to his fellow-creatures, and who in his turn does not feel vexed with his fellow-creatures, and who is free from delight and envy, perturbation and fear, is dear to Me.

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

जो पुरुष आकांक्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है—वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

He who wants nothing, who is both internally and externally pure, is wise and impartial and has risen above all distractions, and who renounces the sense of doership in all undertakings—such a devotee of Mine is dear To Me.

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

He who neither rejoces nor hates, nor grieves, nor desires, and who renounces both good and evil actions and is full of devotion, is dear to Me.

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है। जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

He who deals equally with friend and foe, and is the same in honour and ignominy, who is alike in heat and cold, pleasure and pain and other contrary experiences, and is free from attachment, he who takes praise and reproach alike, and is given to contemplation and is contented with any means of subsistence available, entertaining no sense of ownership and attachment in respect of his dwelling-place and is full of devotion to Me, that person is dear to Me. [श्रीमद्भगवद्गीता १२। १३—१९]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३-१९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, वसन्तऋतु, चैत्र-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १२।१२ बजेतक	शनि	हस्त रात्रिमें १२।२९ बजेतक	१९ मार्च	**वसन्तोत्सव (होली)।**
द्वितीया ,, ११।५ बजेतक	रवि	चित्रा ,, ११।५० बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।२० बजेसे, **तुलाराशि** दिनमें १२।९ बजेसे, **सायन मेषका सूर्य** रात्रिमें १२ ।५७ बजे।
तृतीया ,, ९।३४ बजेतक	सोम	स्वाती ,, १०।५१ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३४ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।१९ बजे, शक सं० १९४४ प्रारम्भ।
चतुर्थी प्रात: ७।४३ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, ९।३४ बजेतक	२२ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ३।५३ बजेसे।
षष्ठी रात्रिमें ३।२२ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ८।५ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।२२ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ८।५ बजेसे।
सप्तमी ,, १२।५८ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा सायं ६।२७ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१० बजेतक, **धनुराशि** सायं ६।२७ बजेसे।
अष्टमी ,, १०।३३ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ४।४६ बजेतक	२५ ,,	**मूल** सायं ४।४६ बजेतक।
नवमी ,, ८।१२ बजेतक	शनि	पू०षा० दिनमें ३।७ बजेतक	२६ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ८।४४ बजेसे।
दशमी सायं ५।५८ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, १।३७ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** प्रात: ७।५ बजेसे सायं ५।५८ बजेतक।
एकादशी दिनमें ३।५७ बजेतक	सोम	श्रवण ,, १२।१७ बजेतक	२८ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ११।४६ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ११।४६ बजे, **पापमोचनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, २।१४ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ११।१४ बजेतक	२९ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १२।५२ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, १०।३० बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें १२।५२ बजेसे रात्रिमें १२।२४ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ४।१७ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ११।५५ बजेतक	गुरु	पू०भा० ,, १०।५० बजेतक	३१ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या, रेवतीका सूर्य** रात्रिमें ९।३१ बजे।
अमावस्या ,, ११।२७ बजेतक	शुक्र	उ०भा० ,, १०।२२ बजेतक	१ अप्रैल	**अमावस्या, मूल** दिनमें १०।२२ बजेसे।

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, वसंतऋतु, चैत्र-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११।२७ बजेतक	शनि	रेवती दिनमें ११।१ बजेतक	२ अप्रैल	**मेषराशि** दिनमें ११।१ बजे, **पंचक** समाप्त दिनमें ११।१ बजे, **चैत्र नवरात्र—'राक्षस' संवत्सर प्रारम्भ।**
द्वितीया ,, १२।१ बजेतक	रवि	अश्वनी ,, १२।१२ बजेतक	३ ,,	**मत्स्यावतार, मूल** दिनमें १२।१२ बजेतक।
तृतीया ,, १।२ बजेतक	सोम	भरणी ,, १।४८ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।४७ बजेसे, **वृषराशि** रात्रिमें ८।२० बजेसे, **गणगौर।**
चतुर्थी ,, २।३१ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ३।५३ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें २।३१ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी दिनमें ४।१९ बजेतक	बुध	रोहिणी सायं ६।१५ बजेतक	६ ,,	× × × ×
षष्ठी सायं ६।२२ बजेतक	गुरु	मृगशिरा रात्रिमें ८।५१ बजेतक	७ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ७।३३ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें ८।२७ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ११।२८ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।२७ बजेसे, **महानिशापूजा।**
अष्टमी ,, १०।२५ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, १।५६ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।२६ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ७।१९ बजेसे, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, १२।७ बजेतक	रवि	पुष्य रात्रिशेष ४।८ बजेतक	१० ,,	**श्रीरामनवमी, मूल** रात्रिशेष ४।८ बजेसे।
दशमी ,, १।२४ बजेतक	सोम	अश्लेषा अहोरात्र	११ ,,	× × × ×
एकादशी ,, २।१५ बजेतक	मंगल	आश्लेषा प्रात: ५।५५ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें १।४९ बजेसे रात्रिमें २।१५ बजेतक, **कामदा एकादशीव्रत** (सबका), **सिंहराशि** प्रात: ५।५५ बजेसे।
द्वादशी ,, २।३९ बजेतक	बुध	मघा ,, ७।१८ बजेतक	१३ ,,	× × × ×
त्रयोदशी ,, २।२६ बजेतक	गुरु	पू०फा० दिनमें ८।१० बजेतक	१४ ,,	**प्रदोषव्रत, कन्याराशि** दिनमें २।१५ बजेसे, **मेष संक्रान्ति** दिनमें १०।५२ बजे, **वैशाखी, खरमास** समाप्त।
चतुर्दशी ,, १।४३ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ८।३१ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।४३ बजेसे।
पूर्णिमा रात्रिमें १२।३५ बजेतक	शनि	हस्त रात्रिमें ८।२३ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें १।९ बजेतक, **श्रीहनुमज्जयन्ती, तुलाराशि** रात्रिमें ८।६ बजेसे, **पूर्णिमा, वैशाखस्नान** प्रारम्भ।

कृपानुभूति

प्रदोष-व्रतकी महिमा

विदर्भ-देशमें सत्यरथ नामके एक परम शिवभक्त, पराक्रमी और तेजस्वी राजा थे। उन्होंने अनेक वर्षोंतक राज्य किया, परंतु कभी एक दिन भी शिवपूजामें किसी प्रकारका अन्तर न आने दिया।

एक बार शाल्वदेशके राजाने दूसरे कई राजाओंको साथ लेकर विदर्भपर आक्रमण कर दिया। सात दिनतक घोर युद्ध होता रहा, अन्तमें दुर्दैववश सत्यरथको परास्त होना पड़ा, इससे दुखी होकर वे देश छोड़कर कहीं निकल गये। शत्रु नगरमें घुस पड़े। रानीको जब यह ज्ञात हुआ तो वह भी राजमहलसे निकलकर सघन वनमें प्रविष्ट हो गयी। उस समय उसके नौ मासका गर्भ था और वह आसन्नप्रसवा ही थी। अचानक एक दिन अरण्यमें ही उसे एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। बच्चेको वहाँ ही अकेला छोड़कर वह प्यासके मारे पानीके लिये वनमें एक सरोवरके पास गयी और वहाँ एक मगर उसे निगल गया।

उसी समय उमा नामकी एक ब्राह्मणी विधवा अपने शुचिव्रत नामक एक वर्षके बालकको गोदमें लिये उसी रास्तेसे होकर निकली। बिना नाल कटे उस बच्चेको देखकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि यदि इस बच्चेको अपने घर ले जाऊँ तो लोग मुझपर अनेक प्रकारकी शंका करेंगे और यदि यहीं छोड़ देती हूँ तो कोई हिंस्र पशु भक्षण कर लेगा। वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि उसी समय यतिके वेषमें भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हुए और उस विधवासे कहने लगे—'इस बच्चेको तुम अपने घर ले जाओ, यह राजपुत्र है। अपने पुत्रके समान ही इसकी रक्षा करना और लोगोंमें इस बातको प्रकट न करना, इससे तुम्हारा भाग्योदय होगा।' इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणीने उस राजपुत्रका नाम धर्मगुप्त रखा।

वह विधवा दोनोंको साथ लेकर उस बच्चेके माता-पिताको ढूँढ़ने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शाण्डिल्य ऋषिके आश्रममें पहुँची। ऋषिने बतलाया कि 'यह राजा सत्यरथका पुत्र है, राजाका देहान्त हो गया है। पूर्वजन्ममें क्रोधवश प्रदोष-व्रतको अधूरा छोड़नेके कारण ही उसकी ऐसी गति हुई है तथा रानीने भी पूर्वजन्ममें अपनी सपत्नीको मारा था, उसीने इस जन्ममें मगरके रूपमें इससे बदला लिया।'

ब्राह्मणीने दोनों बच्चोंको ऋषिके पैरोंपर डाल दिया। ऋषिने उन्हें शिवपंचाक्षरी मन्त्र देकर प्रदोष-व्रत करनेका उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने ऋषिका आश्रम छोड़कर एकचक्रा नगरीमें निवास किया और वहाँ वे चार महीनेतक शिवाराधन करते रहे। दैवात् एक दिन शुचिव्रतको नदीके तटपर खेलते समय एक अशर्फियोंसे भरा स्वर्णकलश मिला, उसे लेकर वह घर आया। माताको यह देखकर अत्यन्त ही आनन्द हुआ और इसमें उसने प्रदोषकी महिमा देखी।

इसके बाद एक दिन वे दोनों लड़के वनविहारके लिये एक साथ निकले, वहाँ अंशुमती नामकी एक गन्धर्वकन्या क्रीडा करती हुई उन्हें दीख पड़ी। उसने धर्मगुप्तसे कहा कि 'मैं एक गन्धर्वराजकी कन्या हूँ, श्रीशिवजीने मेरे पितासे कहा है कि अपनी कन्याको सत्यरथ राजाके पुत्र धर्मगुप्तको प्रदान करना।' गन्धर्वकन्याको 'यही धर्मगुप्त है' ऐसी जानकारी होनेपर उसने विवाहका प्रस्ताव रखा।

धर्मगुप्तने वापस आकर अपनी मातासे यह बात कही। ब्राह्मणीने इसे शिवपूजाका फल और शाण्डिल्य मुनिका आशीर्वाद समझा। बड़े ही आनन्दसे अंशुमतीके साथ धर्मगुप्तका विवाह हो गया। गन्धर्वराजने बहुत-सा धन और अनेकों दास-दासी उन्हें प्रदान किये। इसके पश्चात् धर्मगुप्तने अपने पिताके शत्रुओंपर आक्रमणकर विदर्भ-राज्यको प्राप्त किया। वह सदा प्रदोष-व्रतमें शिवाराधन करते हुए उस ब्राह्मणी और उसके पुत्र शुचिव्रतके साथ जीवनपर्यन्त सुखसे राज्य करता रहा और अन्तमें शिवलोकको प्राप्त हुआ। **[स्कन्दपुराण]**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक अपरिचितकी निष्काम सेवा-भावना

यह घटना मई १९७४ के अन्तिम सप्ताहकी है। उस समय मेरी पोस्टिंग जगदलपुर मध्यप्रदेश (अब छत्तीसगढ़)-में थी। संघ लोकसेवा आयोग (यू०पी०एस० सी०)-द्वारा आयोजित परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके परिणामस्वरूप मेरी पोस्टिंग केन्द्रीय जल आयोग, नई दिल्लीमें सहायक निदेशकके पदपर हो चुकी थी और मुझे जून १९७४के अन्दर दिल्ली जाना था, इस कारण मैं अपने परिवारको अपने गाँव पहुँचानेके उद्देश्यसे पत्नी एवं दो छोटे बच्चोंको लेकर जगदलपुरसे रायपुरकी रात्रि-सेवावाली बसपर बैठ गया। मेरी तबीयत बिलकुल ठीक थी। पूरे दिन दफ्तरमें काम करके शामको हलका नाश्ता करके हमलोग बसपर सवार हुए थे। जगदलपुरसे कांकेरतककी यात्रामें एक बड़ी घाटी पड़ती है, जिसमें अक्सर लोगोंको उलटी हो जाया करती है, पर मुझे कुछ नहीं हुआ; क्योंकि मैं तो १९६७ से १९७४के बीच दस-पन्द्रह बार यात्रा कर चुका था। मैं निश्चिन्त होकर बैठा था, पर जैसे ही कांकेरमें बस रुकी, मुझे पेटमें दर्द हुआ और मैं पासके शौचालय चला गया। मुझे पतला दस्त हुआ और साथमें एक उलटी भी हुई। बस यहाँपर करीब आधा घंटा रुकती थी और यात्री रात्रिका भोजन करते थे। बस एक होटलके सामने रुकी थी। हम तो अपना भोजन साथमें लिये हुए थे। पत्नीने कहा, भोजन कर लेते हैं। मैंने कहा, 'मुझे ठीक नहीं लग रहा है, थोड़ा रुक जाओ।' इतना कहते ही मुझे फिर दर्द हुआ और फिर उलटीके साथ-साथ फिरसे दस्त भी हो गया। मैंने ईश्वरका स्मरण करते हुए विचार किया कि अब क्या करूँ? मुझे ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि आगेकी यात्रा स्थगित कर दो। मैंने पत्नीसे कहा कि मेरा विचार आगे यात्रा न करनेका है। उन्होंने भी सलाह दी कि यदि आपको अच्छा नहीं लग रहा है तो आज रात यहीं होटलमें रुक लेते हैं, कल चले चलेंगे।

हमने बससे अपना सामान उतार लिया और होटलमें जाकर पता किया तो एक कमरा मिल गया। हम उस कमरेमें रुक गये और विचार कर ही रहे थे कि भोजन करके विश्राम किया जाय कि मुझे फिरसे पेटमें दर्द होने लगा और जब शौचालयमें गया, तो उलटी-दस्तका ऐसा सिलसिला चला कि मैं वहींसे चिल्लाया कि मेरी हालत बहुत खराब है। पत्नी मुझे शौचालयसे बिस्तरपर लायी और फिर कमरेमें ही उलटी और दस्त होने लगे। मैं बेहोश-सा हो गया था। मुझे बताया गया कि मुझे खूनकी उलटी-दस्त होने लगे थे, तब मेरा बड़ा पुत्र जो चार सालका था, होटलके भोजन-कक्षमें जाकर रोते हुए पुकारने लगा कि मेरे पिताजी खूनकी उलटी करने लगे हैं, कोई हमारी मदद करनेकी कृपा करें। उस समय रात्रिके लगभग साढ़े दस बजे थे। कुछ लोग भोजन कर रहे थे। उनमेंसे एक सज्जन (हमारे लिये तो देवदूत सिद्ध हुए) हमारे कक्षमें आये और पत्नीसे बोले कि अपने दोनों बच्चोंको लेकर कमरेसे बाहर आइये। सामान यहींपर रखकर ताला लगा दीजिये। आपके पतिको मैं उठाकर रिक्शेमें बैठाता हूँ। रिक्शा बाहर खड़ा है। इससे पूर्व उन सज्जनने किसीको भेजकर पता लगवाया कि शायद कोई प्राइवेट डॉक्टर मिल जाय तो ले आयें। पर कोई न मिला, तब सरकारी अस्पताल ले जानेका निर्णय किया। उन्होंने हमें सरकारी अस्पताल पहुँचाया ही नहीं बल्कि चिकित्साका पूरा प्रबन्ध भी स्वयं किया।

अस्पतालमें उस समय केवल एक नर्स थी। उन सज्जनने कहा कि इन्हें तुरन्त ड्रिप लगाओ, इनकी हालत बिगड़ती जा रही है। नर्सने कहा, मुझे पता नहीं ड्रिपका सामान कहाँ है। उन सज्जनने इधर-उधर देखकर कहा कि इस आलमारीमें है, चाबी लाओ। उन्होंने आलमारी खोलकर सब सामान निकालकर सामने रख दिया। अब प्रश्न था कि

इन्जेक्शन लगानेकी व्यवस्था कैसे हो; क्योंकि उस समय डिस्पोजल सिरेन्ज नहीं हुआ करती थी। काँचकी सिरेन्जको खौलते पानीमें उबालकर पुनः उपयोगहेतु तैयार किया जाता था। उन सज्जनने खुद स्टोव जलाकर इन्जेक्शनहेतु सिरेन्ज तैयार करके दी और उपयुक्त इन्जेक्शन भी किसी आलमारीमें-से ढूँढ़कर लाये और तब नर्ससे कहा कि अब इन्जेक्शन लगाकर ड्रिप भी चढ़ा दीजिये। मेरी हालत देखकर उस नर्सको भी दया आ गयी होगी और उसने उचित उपचार किया, जिसके परिणामस्वरूप मेरे उलटी-दस्त रुक गये और होश भी आ गया। पता नहीं कितनी रात हो गयी होगी और जब उन सज्जनने देख लिया कि मैं खतरेसे बाहर हूँ, तभी वे अस्पतालमें मेरे बगलमें ही कुर्सीपर बैठे।

प्रातः समय मेरी तबीयत सामान्य होने लगी थी। मैंने उन सज्जनसे अब उनका परिचय पूछा। उन्होंने बताया कि वे बुंदेलखण्डके रहनेवाले 'शुक्ला' ब्राह्मण हैं। यहाँ सर्विस करते हैं। हमने भी अपना परिचय दिया। तत्पश्चात् शुक्लाजी करीब १० बजे मेरी पत्नी और बच्चोंको साथ लेकर अस्पतालसे होटलके कमरेकी सफाई कराने गये। वहाँपर लोग चर्चा कर रहे थे कि रातमें जो मरीज यहाँसे अस्पताल गया था, वह बचा कि नहीं। हालत बहुत नाजुक थी, बचना मुश्किल था। आगे ईश्वरेच्छा। इसी वार्तालापके बीच मेरी पत्नी उस कमरेकी सफाई करने लगीं, जिसमें रात्रिको हम रुके थे। होटलका मालिक बड़ी उत्सुकतासे पूछता है कि बेटी, आपके पतिकी कैसी हालत है? उन्हें बताया गया कि वे ठीक हैं। इसके बाद होटलके मालिक स्वयं मुझे देखने अस्पताल आये और मुझे ठीक हालतमें देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने बताया कि आपकी हालत देखकर कल रात कोई भी आपके पास आनेकी हिम्मत नहीं कर रहा था, क्योंकि आपको हैजाके लक्षण थे। सभी नाक-मुँह दबाकर बचते हुए जा रहे थे। जो सज्जन आपको अस्पताल ले आये और आपका इलाज कराया, वे आपके लिये मानो भगवान् बनकर आये थे। मैं भी उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ। होटलके मालिक जो बहुत बुजुर्ग थे, ने आगे यह भी कहा कि बेटा, तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो भगवान्की कृपासे बच गये, क्योंकि कल रात होटलमें जिसने भी आपको देखा था, यही कह रहे थे कि इस आदमीका बचना मुश्किल है। ईश्वर ही कोई चमत्कार कर दें, तो ही बच सकेगा। मैंने होटलके मालिकसे कहा कि जो सज्जन रात्रिमें हमें अस्पताल ले आये थे, वे हमारे लिये ईश्वरकी कृपासे देवदूत बनकर आये थे। उन्होंने जो प्रयास किये, उसीके परिणाम-स्वरूप मेरी जान बच सकी। यह ईश्वरकी कृपा ही है, अन्यथा इस अनजाने कस्बेमें हम कहाँ-कैसे उपचार कराते।

श्रीशुक्लाजीने मेरी पत्नी और बच्चोंको होटलमें भोजन कराया तथा होटलका कमरा खाली करवाकर उन्हें अस्पताल छोड़ गये और मेरे लिये खिचड़ीका प्रबन्ध कर दिया। उल्लेखनीय है कि श्रीशुक्लाजी तो अविवाहित थे, तभी रातमें दस बजे होटलमें भोजन कर रहे थे। जब हमने बताया कि हम पटैरया हैं, तो उन्होंने कहा कि उनके मित्र भी पटैरया हैं, जो यहींपर रहते हैं। शामको उनको लेकर आऊँगा। शामके समय श्रीशुक्लाजी अपने मित्र और उनकी पत्नीसहित आये और हमारे लिये भोजन भी लाये। दूसरे दिन श्रीशुक्लाजीके मित्र श्रीपटैरयाजी मेरी पत्नी और बच्चोंको अपने घरपर ले गये तथा स्नानादिके पश्चात् भोजन कराया और शामके लिये टिफिन दे दिया। तीसरे दिनतक मेरी तबीयत सामान्य हो गयी थी और मैं यात्रा करनेयोग्य हो गया। हमने शुक्लाजीसे आग्रह किया कि आप अपना बुंदेलखण्डका स्थायी पता लिखवा दीजिये और दोपहरको हम जानेवाले हैं, उस समय अवश्य दर्शन दे दीजियेगा। उन्होंने न तो अपना और न अपने मित्र श्रीपटैरयाजीका पता दिया और न हमारे जानेके समय बसस्टैण्डपर आये। हम तो यही मानते हैं कि ईश्वरकी कृपासे वे हमारे लिये देवदूत बनकर आये और मुझे

मौतके मुँहसे निकाल लिया। उनकी निष्काम सेवा-भावनाके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। यदि संसारके दस प्रतिशत व्यक्ति भी उनकी तरह हो जायँ, तो यह दुनिया स्वर्ग बन जाय।—**डॉ० भगवानदास पटैरया**

(२)

मौनका अर्थ समझो

सिद्ध एवं ब्रह्मनिष्ठ संत उड़िया बाबा समय-समयपर अपने उपदेशोंमें वाणीपर संयम रखनेकी प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते थे—वाणीसे कभी भी निरर्थक शब्द नहीं निकालना चाहिये। कटु—कड़वा शब्द निकालकर किसीको प्रताड़ित कदापि नहीं करना चाहिये। शब्द ब्रह्म होता है। एक-एक शब्दका सदुपयोग करना चाहिये।

एक बार एक युवा साधुने उनके उपदेशसे प्रभावित होकर कहा—'बाबा! कुछ साधक मौन धारण करते हैं। क्या मौनसे लाभ होता है?' बाबाने कहा—'क्यों नहीं होता। मौनसे वाणीका दुरुपयोग नियन्त्रित होता है, उससे अनूठी शक्ति मिलती है।'

साधुने एक सप्ताहका मौन धारण करनेका संकल्प ले लिया। उड़िया बाबाके साथ वह गंगातट-स्थित कुटियामें रहने लगा।

एक दिन उड़िया बाबा कर्णवासमें गंगातटपर बैठे भगवच्चिन्तनमें लीन थे। अचानक उन्होंने देखा कि गंगामें स्नान करनेवाला एक व्यक्ति पैर फिसलनेसे डूबने लगा। बाबाने यह देखा तो मौन व्रती साधुको संकेतकर कहा—'अरे, शोर मचाओ; जिससे खेतमें काम करनेवाले केवट भागकर इस डूबतेकी रक्षा करें।' साधु मौन बैठा रहा। बाबा स्वयं खड़े हुए तथा शोर मचाया। एक नाविकने बह रहे व्यक्तिको गंगाजीमें कूदकर बचा लिया।

उड़िया बाबाने साधुको समझाया—'मौनव्रतका यह अर्थ नहीं है कि किसीके प्राण बचते हों तब भी जिह्वाका उपयोग नहीं करे। कोई चोरी करने आये तो मौनी बाबा बनकर चुप बैठा रहे। कोई अपराध हो रहा हो तो मूकदर्शक बना देखता रहे।'

बाबाने चंद शब्दोंमें ही मौनका महत्त्व बता दिया।

प्रेषक—श्रीशिवकुमार गोयल

(३)

शम्भू महाराजका प्याऊ

बात उस समयकी है, जब मैं मात्र छः वर्षका था। वैशाखका महीना था, पिताजी और छोटे भाईके साथ मैं दोपहरमें पठारीसे सेहराई हाटमें, जो सोमवारको लगती है; जा रहा था। धूप काफी तेज थी, रास्तेमें एक महुआका पेड़ पड़ता है। ५ किलोमीटरके रास्तेमें उस समय वही एक आश्रय था। हमलोग उसके नीचे रुके। अन्य राहगीर भी इसकी छायामें रुके थे। थोड़ी देरमें मेरे भाईने पानीकी फरमाइश की। यहाँ आस-पास पानीका कोई साधन नहीं था। पिताजीने सेहराई चलनेको कहा; लेकिन भाई वहीं पानीके लिये कहता रहा। उसने रोना प्रारम्भ कर दिया। पिताजीके साथ ठहरे राहगीरोंने समझाया, लेकिन उसने रोना बंद नहीं किया। पिताजीने गुस्सेमें मारा भी, लेकिन उसने रोना बन्द नहीं किया। अपनी जिदपर जमा रहा। इसी समय श्रीशम्भूदयाल विदुआ जो जंगलके ठेकेदार थे, साइकिलसे सेहराई जा रहे थे, वे भी वहीं रुके। उन्होंने भाईको समझाया तथा मिठाई खानेको पैसा भी दिया। वह रोना बन्दकर सेहराई चला गया। पिताजीने हम दोनों भाइयोंके लिये कपड़े खरीदे तथा टेलरको सिलनेके लिये दे दिये।

अगले सोमवारको जब मैं कपड़े लेने गया और महुएके पेड़के नीचे रुका तो देखा कि पानीके मटके भरे गाँवकी ही एक महिला पानी पिला रही। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, जब पूछा तो बताया कि जबतक बरसात न हो तबतक शम्भू महाराजने हमें पानी पिलानेको कहा है। यह प्याऊका क्रम १९४२ से १९७२ तक चलता रहा। प्रतिवर्ष शीतला अष्टमीसे जबतक बरसात न हो तबतक शम्भू महाराजका प्याऊ उस महुएके पेड़के नीचे चलता। इससे १५-२० गाँवके राहगीरोंको बड़ी शान्ति मिलती थी। जब पठारीमें पचमउआ वारनका कुआँ खुदा तबतक यह प्याऊ चलता रहा। उस समयका महुएका छोटा पेड़ अब भारी पेड़ बन गया है, वहाँ अब प्याऊ नहीं है, लेकिन वह स्थान प्याऊकी गुल्लियाके नामसे आज भी विख्यात है, जो शम्भू महाराजके उच्च मानवीय दृष्टिकोणका परिचायक है।—**मूगालाल मोदी**

मनन करने योग्य

सच्ची कृपा

एक बार एक निर्धन ब्राह्मणके मनमें धन पानेकी तीव्र कामना हुई। वह सकाम यज्ञोंकी विधि जानता था; किंतु धन ही नहीं तो यज्ञ कैसे हो? वह धनकी प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा और व्रत करने लगा। कुछ समय एक देवताकी पूजा करता; परंतु उससे कुछ लाभ नहीं दिखायी पड़ता तो दूसरे देवताकी पूजा करने लगता और पहलेको छोड़ देता। इस प्रकार उसे बहुत दिन बीत गये। अन्तमें उसने सोचा—'जिस देवताकी आराधना मनुष्यने कभी न की हो, मैं अब उसीकी उपासना करूँगा। वह देवता अवश्य मुझपर शीघ्र प्रसन्न होगा।'

ब्राह्मण यह सोच ही रहा था कि उसे आकाशमें कुण्डधार नामक मेघके देवताका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। ब्राह्मणने समझ लिया कि 'मनुष्यने कभी इनकी पूजा न की होगी। ये बृहदाकार मेघदेवता देवलोकके समीप रहते हैं, अवश्य ये मुझे धन देंगे।' बस, बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे ब्राह्मणने उस कुण्डधार मेघकी पूजा प्रारम्भ कर दी।

ब्राह्मणकी पूजासे प्रसन्न होकर कुण्डधारने देवताओंकी स्तुति की; क्योंकि वह स्वयं तो जलके अतिरिक्त किसीको कुछ दे नहीं सकता था। देवताओंकी प्रेरणासे यक्षश्रेष्ठ मणिभद्र उसके पास आकर बोले—'कुण्डधार! तुम क्या चाहते हो?'

कुण्डधार—'यक्षराज! देवता यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे उपासक इस ब्राह्मणको वे सुखी करें।'

मणिभद्र—'तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण यदि धन चाहता हो तो इसकी इच्छा पूर्ण कर दो। यह जितना धन माँगेगा, वह मैं इसे दे दूँगा।'

कुण्डधार—'यक्षराज! मैं इस ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि देवताओंकी कृपासे यह धर्मपरायण हो जाय। इसकी बुद्धि धर्ममें लगे।'

मणिभद्र—'अच्छी बात! अब ब्राह्मणकी बुद्धि धर्ममें ही स्थित रहेगी।' उसी समय ब्राह्मणने स्वप्नमें देखा कि उसके चारों ओर कफन पड़ा हुआ है। यह देखकर उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा—'मैंने इतने देवताओंकी और अन्तमें कुण्डधार मेघकी भी धनके लिये आराधना की, किंतु इनमें कोई उदार नहीं दीखता। इस प्रकार धनकी आशमें ही लगे हुए जीवन व्यतीत करनेसे क्या लाभ! अब मुझे परलोककी चिन्ता करनी चाहिये।'

ब्राह्मण वहाँसे वनमें चला गया। उसने अब तपस्या करना प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेके कारण उसे अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। वह स्वयं आश्चर्य करने लगा—'कहाँ तो मैं धनके लिये देवताओंकी पूजा करता था और उसका कोई परिणाम नहीं होता था और कहाँ अब मैं स्वयं ऐसा हो गया कि किसीको धनी होनेका आशीर्वाद दे दूँ तो वह निःसंदेह धनी हो जायगा!'

ब्राह्मणका उत्साह बढ़ गया। तपस्यामें ही उसकी श्रद्धा बढ़ गयी। वह तत्परतापूर्वक तपस्यामें ही लगा रहा। एक दिन उसके पास वही कुण्डधार मेघ आया। उसने कहा—'ब्रह्मन्! तपस्याके प्रभावसे आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी है। अब आप धनी पुरुषों तथा राजाओंकी गति देख सकते हैं।' ब्राह्मणने देखा कि धनके कारण गर्वमें आकर लोग नाना प्रकारके पाप करते हैं और घोर नरकोंमें गिरते हैं।

कुण्डधार बोला—'भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके आप यदि धन पाते और अन्तमें नरककी यातना भोगते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? जीवका लाभ तो कामनाओंका त्याग करके धर्माचरण करनेमें ही है। उनपर सच्ची कृपा तो उन्हें धर्ममें लगाना ही है। उन्हें धर्ममें लगानेवाला ही उनका सच्चा हितैषी है।'

ब्राह्मणने मेघके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कामनाओंका त्याग करके अन्तमें मुक्त हो गया।

[महाभारत, शान्तिपर्व]

महाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

1 मार्च मंगलवारको महाशिवरात्रि पर्व है

श्रीशिवमहापुराण-सटीक, सजिल्द [कोड 2223, 2224] दो खण्डोंमें—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹ 650, **संक्षिप्त शिवमहापुराण,** गुजराती **(कोड 1286)** मूल्य ₹ 250, तेलुगु **(कोड 975)** मूल्य ₹ 230, बँगला **(कोड 1937)** मूल्य ₹ 200, कन्नड़ **(कोड 1926)** मूल्य ₹ 200, तमिल **(कोड 2043)** मूल्य ₹ 300

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
789	**संक्षिप्त श्रीशिवमहापुराण-मोटा टाइप**	250
1468	**संक्षिप्त श्रीशिवमहापुराण-विशिष्ट संस्करण**	300
2020	**शिवमहापुराण**-मूलमात्रम्	275
1985	**लिङ्गमहापुराण**-सटीक	250
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**-सानुवाद	40
1899	**श्रावणमास-माहात्म्य** ,,	45
1954	**शिव-स्मरण**	10
1156	**एकादश रुद्र (शिव)-** चित्रकथा	50
204	**ॐ नमः शिवाय** चित्रकथा	25
1343	**हर हर महादेव** चित्रकथा	25
2189	**शिवपुराण कथासार**	25
563	**शिवमहिम्नःस्तोत्र**	5
228	**शिवचालीसा**-पॉकेट साइज	5
1185	**शिवचालीसा**-लघु	3
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद	40
2155	**द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग**	40
1599	**श्रीशिवसहस्र...**नामावलि...	10
2127	**शिव-आराधना—** पॉकेट साइज (बेड़िआ)	8
2261	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्र** हिन्दी अनुवादसहित	8
230	**अमोघ शिवकवच**	5

चैत्र-नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

2 अप्रैल शनिवारसे नवरात्रारम्भ होगा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	**श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (वि०सं०)**	750
80	,, **बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)**	650
1095	,, **ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०)** [गुजरातीमें भी]	400
81	,, **ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप,** [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, नेपाली, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	330
1402	,, **ग्रन्थाकार, सटीक**	260
2166	,, **ग्रन्थाकार, सटीक, सामान्य संस्करण**	230
1563	,, **मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)**	150
1436	,, **बृहदाकार, मूलपाठ**	350
1318	,, **रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित (मझला भी)**	400
82	**श्रीरामचरितमानस—मझला साइज, सटीक,** [बँगला, गुजराती भी]	150
83	,, **मूलपाठ, ग्रन्थाकार** [गुजराती, ओड़िआ भी]	150
84	,, **मूल, मझला साइज** [गुजराती भी]	85
85	,, **मूल, गुटका** [गुजराती भी]	60
1544	,, **मूल, गुटका (विशिष्ट संस्करण)**	70
2234	,, **सुन्दरकाण्ड, मूल, बृहदाकार टाइप**	70
2284	,, **सुन्दरकाण्ड, मूल, बृहदाकार टाइप** [गुजराती]	60
2151	**सचित्र रामरक्षास्तोत्रम्—पुस्तकाकार (बेड़िआ)**	15
	सुन्दरकाण्ड सटीक, मूल पाठ कई आकार-प्रकारमें	

नित्य पाठके लिये 'श्रीदुर्गासप्तशती' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2236	**सरल श्रीदुर्गासप्तशती-मूल (दो रंगोंमें)**	35
1567	**श्रीदुर्गासप्तशती—मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)**	50
876	**श्रीदुर्गासप्तशती—मूल, गुटका**	20
1346	**श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सजिल्द मोटा टाइप**	40
1281	**श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सजिल्द (राजसंस्करण)**	60
489	**श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सजिल्द** [गुजरातीमें भी]	60
1161	**श्रीदुर्गासप्तशती—मोटा टाइप, सजिल्द**	60
118	**श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सामान्य टाइप** [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, नेपाली भी]	40
866	**श्रीदुर्गासप्तशती—केवल हिन्दी**	25
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**	45
2226	**देवी भागवत कथासार**	20
	श्रीदुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरीचालीसा कई आकार-प्रकारमें	

प्र० ति० 20-01-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

'कल्याण' के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् 2022 ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् 2022 ई० का विशेषाङ्क **'कृपानुभूति-अङ्क'** वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, वे सदस्यता-शुल्क भेजकर रजिस्ट्रीसे अथवा वी०पी०पी० से भी पुन: मँगवा सकते हैं। जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी किसी कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता, मोबाइल नम्बर तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिका विवरण हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन-हेतु e-mail : **kalyan@gitapress.org/ 09235400242/244/8188054404** पर सम्पर्क करना चाहिये। इसके अतिरिक्त **'कल्याण'** के विषयमें किसी भी जानकारीके लिये **9648916010** पर SMS एवं WhatsApp भी कर सकते हैं।

वार्षिक-शुल्क—₹ 250, पंचवर्षीय-शुल्क—₹ 1250, शेष 11 मासिक-अङ्क रजिस्ट्रीसे भेजनेके लिये ₹200 अतिरिक्त।

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुरको भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

महाभारत सटीकके अब सभी खण्ड उपलब्ध

कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹
32	प्रथम खण्ड	आदिपर्वसे सभापर्वतक।	450
33	द्वितीय खण्ड	वनपर्वसे विराटपर्वतक।	450
34	तृतीय खण्ड	उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक।	450
35	चतुर्थ खण्ड	द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक।	450
36	पञ्चम खण्ड	शान्तिपर्व।	450
37	षष्ठ खण्ड	अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक।	450
728	महाभारत-सटीक (छ: खण्डोंमें)		मूल्य ₹ 2700

सभी खण्ड एक साथ मँगवानेपर डाकखर्च ₹ 450, एवं प्रत्येक खण्ड अलग-अलग मँगवानेपर ₹ 90 देय होगा।

योग एवं आरोग्यपर तीन प्रमुख प्रकाशन—अब उपलब्ध

पातञ्जलयोग-प्रदीप (कोड 47) ग्रन्थाकार—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। मूल्य ₹ 225

योगाङ्क (कोड 616) ग्रन्थाकार—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्रका वर्णन है। मूल्य ₹ 330

आरोग्य-अङ्क [संवर्धित संस्करण] (कोड 1592) ग्रन्थाकार—विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों, घरेलू औषधियों तथा स्वास्थ्यरक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंका संग्रह है। मूल्य ₹ 260

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)